# श्रीचन्द्रावली

## नाटिका

काव्य, सुरस सिंगार के दोउ दल, कविता नेम।
जग-जन सों कै ईस सों कहियत जेहि पर प्रेम॥
हरि उपासना, भक्ति, वैराग, रसिकता ज्ञान।
सौधैं जग-जन मानि या चन्द्रावलिहि प्रमान॥

संवत् १९३३

# समर्पण

प्यारे !

लो, तुम्हारी चन्द्रावली तुम्हें समर्पित है। अंगीकार तो किया ही है, इस पुस्तक को भी उन्हींकी कानि से अंगीकार करो ! इसमें तुम्हारे उस प्रेम का वर्णन है, इस प्रेम का नहीं जो संसार मे प्रचलित है। हॉ, एक अपराध तो हुआ जो अवश्य क्षमा करना होगा। वह यह कि यह प्रेम की दशा छापकर प्रसिद्ध की गई। वा प्रसिद्ध करने ही से क्या जो अधिकारी नही है उनकी समझ ही में न आवेगा।

तुम्हारी कुछ विचित्र गति है। हर्मा को देखो। जब अपराधों को स्मरण करो तब ऐसे कि कुछ कहना ही नहीं। क्षण भर जीने के योग्य नही। पृथ्वी पर पैर धरने की जगह नही। मुँह दिखाने के लायक नही। और जो यों देखो तो ये लम्बे-लम्बे मनोरथ। यह बोलचाल। यह ढिठाई कि तुम्हारा सिद्धात कह डालना। जो हो, इस दूध-खटाई की एकत्र स्थिति का कारण तुम्हीं जानो। इसमें कोई संदेह नही कि जैसे हों तुम्हारे बनते हैं। अतएव क्षमासमुद्र ! क्षमा करो ! इसीमें निर्वाह है। बस—

भाद्रपद कृष्ण १४<br>सं० १९३३

हरिश्चन्द्र

# श्रीचन्द्रावली

## नाटिका

स्थान—रंगशाला

(ब्राह्मण आशीर्वाद पाठ करता हुआ आया)

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अलौकिक घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥

और भी

नेति नेति तत्-शब्द-प्रतिपाद्य सर्व भगवान।
चन्द्रावली-चकोर श्रीकृष्ण करो कल्यान॥

(सूत्रधार आता है)

**सूत्र०**—बस बस, बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं। मारिष! मारिष!! दौड़ो दौड़ो, आज ऐसा अच्छा अवसर फिर न मिलेगा, हम लोग अपना गुण दिखाकर आज निश्चय कृतकृत्य होंगे।

(पारिपार्श्वक आकर)

**पारि०**—कहो कहो, आज क्यों ऐसे प्रसन्न हो रहे हो? कौनसा नाटक करने का विचार है और उसमें ऐसा कौन-सा रस है कि फूले नहीं समाते?

**सूत्र०**—आः, तुमने अबतक न जाना? आज मेरा विचार है कि इस समय के बने एक नए नाटक की लीला करूँ, क्योंकि संस्कृत नाटकों को अपनी भाषा में अनुवाद करके तो हम लोग अनेक बार खेल चुके हैं, फिर बारंबार उन्हींके खेलने को जी नही चाहता।

**पारि०**—तुमने बात तो बहुत अच्छी सोची, वाह क्यों न हो, पर यह तो कहो कि वह नाटक बनाया किसने है?

**सूत्र०**—हमलोगों के परम मित्र हरिश्चन्द्र ने।

**पारि०**—(मुँह फेर कर) किसी समय तुम्हारी बुद्धि में भी भ्रम हो जाता है। भला वह नाटक बनाना क्या जाने! वह तो केवल आरम्भ-शूर है। और अनेक बड़े-बड़े कवि हैं, कोई उनका प्रबन्ध खेलते।

**सूत्र०**—(हँसकर) इसमे तुम्हारा दोष नहीं, तुम तो उससे नित्य नहीं मिलते। जो लोग उसके संग में रहते हैं वे तो उसको जानते ही नहीं, तुम बिचारे क्या हो।

**पारि०**—(आश्चर्य से) हाँ, मैं तो जानता ही न था, भला कहो उनके दो-चार गुण मैं भी सुन सकता हूँ ?

**सूत्र०**—क्यों नहीं, पर जो श्रद्धा से सुनो तो।

**पारि०**—मैं प्रति रोम को कर्ण बना कर महाराज पृथु हो रहा हूँ, आप कहिए।

**सूत्र०**—(आनन्द से) सुनो—

परम-प्रेमनिधि रसिक-बर, अति-उदार गुन-खान।
जग-जन-रंजन, आशु-कवि, को हरिचन्द-समान॥
जिन श्रीगिरिधरदास कवि, रचे ग्रन्थ चालीस।
ता-सुत श्रीहरिचन्द कों, को न नवावै सीस॥
जग जिन तृन-सम करि तज्यौ, अपने प्रेम-प्रभाव।
करि गुलाब सों आचमन, लीजत वाको नाँव॥
चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत के नेम।
यह दृढ़, श्रीहरिचन्द को, टरै न अविचल प्रेम॥

**पारि०**—वाह-वाह ! मै ऐसा नहीं जानता था, तब तो इस प्रयोग में देर करनी ही भूल है।

(नेपथ्य में)

स्रवन-सुखद भव-भय-हरन, त्यागिन कों अत्याग।
नष्ट-जीव बिनु कौन हरि-गुन सों करै विराग॥
हम साँहू तजि जात नहिं, परम पुन्य फल जौन।
कृष्णकथा सौं मधुरतर जग मैं भाख्यौ कौन ?॥

**सूत्र०**—(सुनकर आनन्द से) अहा ! वह देखो मेरा प्यारा छोटा भाई शुकदेव जी बनकर रंगशाला में आता है और हमलोग बातों ही से नहीं सुलझे। तो अब मारिष ! चलो, हम लोग भी अपना-अपना वेष धारण करें।

**पारि०**—क्षण भर और ठहरो, मुझे शुकदेव जी के इस वेष की शोभा देख लेने दो, तब चलूँगा।

**सूत्र०**—सच कहा, अहा कैसा सुन्दर बना है, वाह मेरे भाई वाह ! क्यों न हो, आखिर तो मुझ रंगरंजक का भाई है।

अति कोमल सब अंग रंग साँवरो सलोना ।
घूँघरवाले बालन पैं बलि वारौं टोना ॥
भुज बिसाल, मुख चंद झलमले, नैन लजौंहैं ।
जुग कमान सी खिची गड़त हिय में दोउ भौंहैं ॥
छबि लखत नैन छिन नहिं टरत शोभा नहि कहि जात है ।
मनु प्रेमपुञ्ज ही रूप धरि आवत आजु लखात है ॥
तो चलो, हम भी अपने-अपने स्वाँग सजकर आवें ।

( दोनों जाते हैं )

॥ इति प्रस्तावना ॥

---

# अथ विष्कम्भक

( आनन्द में घूमते हुए डगमगी चाल से शुकदेव जो आते हैं )

**शुक०**—( स्रवन-सुखद इत्यादि फिर से पढ़कर ) अहा ! संसार के जीवों की कैसी विलक्षण रुचि है, कोई नेम धर्म मे चूर है, कोई ज्ञान के ध्यान में मस्त, कोई मत-मतांतर के झगड़े मे मतवाला हो रहा है, एक दूसरे को दोष देता है, अपने को अच्छा समझता है, कोई संसार को ही सर्वस्व मानकर परमार्थ से चिढ़ता है, कोई परमार्थ ही को परम पुरुषार्थ मान कर घर-बार तृण-सा छोड़ देता है। अपने-अपने रग मे सब रगे है। जिसने जो सिद्धान्त कर लिया है वही उसके जी मे गड़ रहा है और उसीके खंडन-मंडन में जन्म बिताता है, पर वह जो परम प्रेम अमृत-मय एकांत भक्ति है, जिसके उदय होते ही अनेक प्रकार के आग्रह-स्वरूप ज्ञान-विज्ञानादिक अन्धकार नाश हो जाते हैं और जिसके चित्त में आते ही संसार का निगड़ आपसे आप खुल जाता है—वह किसी को नहीं मिली; मिले कहाँ से ? सब उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं। और भी, जो लोग धार्मिक कहाते हैं, उनका चित्त, स्वमत-स्थापन और पर-मत-निराकरण-रूप वाद-विवाद से, और जो बिचारे विषयी हैं उनका अनेक प्रकार की इच्छारूपी तृष्णा से, अवसर तो पाता ही नही कि इधर झुके। (सोचकर) अहा ! इस मदिरा को शिवजी ने पान किया है और कोई क्या पिएगा ? जिसके प्रभाव से अर्द्धांग में बैठी पार्वती भी उनको विकार नहीं कर सकतीं, धन्य हैं, धन्य हैं, और दूसरा ऐसा कौन है। (विचारकर) नहीं-नहीं, व्रज की गोपियों ने उन्हे भी जीत लिया है। अहा ! इनका कैसा विलक्षण प्रेम है कि अकथनीय और अकरणीय है; क्योंकि जहाँ माहात्म्य-ज्ञान होता है वहाँ प्रेम नहीं होता और जहाँ पूर्ण प्रीति होती है वहाँ माहात्म्य-ज्ञान नहीं होता। ये धन्य हैं कि इनमे दोनों बातें एक संग मिलती हैं, नहीं तो मेरा-सा निवृत्त मनुष्य भी रात-दिन इन्हीं लोगों का यश क्यों गाता ?

(नेपथ्य में वीणा बजती है)

(आकाश की ओर देखकर और वीणा का शब्द सुनकर)

आहा ! यह आकाश कैसा प्रकाशित हो रहा है और वीणा के कैसे मधुर

स्वर कान में पड़ते हैं। ऐसा सम्भव होता है कि देवर्षि भगवान् नारद यहाँ आते हैं। अहा! वीणा कैसे मीठे सुर से बोलती है (नेपथ्य-पथ की ओर देखकर) अहा! वही तो हैं, धन्य हैं, कैसी सुन्दर शोभा है!

पिंग जटा को भार सीस पै सुन्दर सोहत।
गल तुलसी की माल बनी जोहत मन मोहत॥
कटि मृगपति को चरम, चरन मैं घुँघरू धारत।
नारायण गोविन्द कृष्ण यह नाम उचारत॥
लै बीना कर बादन करत तान सात सुर सों भरत।
जग अघ छिन मै हरि कहि हरत जेहि सुनि नर भव-जल तरत॥
जुग तूँबन की बीन परम सोभित मनभाई।
लय अरु सुर की मनहुँ जुगल गटरी लटकाई॥
आरोहन अवरोहन के के द्वै फल सोहैं।
के कोमल अरु तीव्र सुर भरे जग-मन मोहैं॥
कै श्रीराधा अरु कृष्ण के अगनित गुन गन के प्रगट।
यह अगम खजाने द्वै भरे नित खरचत तो हू अघट॥
मनु तीरथ-मय कृष्ण-चरित की काँवरि लीने।
के भूगोल खगोल दोउ कर-अमलक कीने॥
जग-बुद्धि तौलन हेत मनहुँ यह तुला बनाई।
भक्ति-मुक्ति की जुगल पिटारी कै लटकाई॥
मनु गावन सों श्रीराग के बीना हू फलती भई।
कै राग-सिन्धु के तरन हित, यह दोऊ तूँबी लई॥
ब्रह्म-जीव, निरगुन-सगुन, द्वैताद्वैत-विचार।
नित्य-अनित्य विवाद के द्वै तूँबा निरधार॥
जो इक तूँबा लै कढ़ै, सो बैरागी होय।
क्यों नहिं ये सबसों बढ़ै, लै तूँबा कर दोय॥

तो अब इनसे मिलके आज मैं परमानन्द लाभ करूँगा।

(नारदजी आते हैं)

**शुक०**—(आगे बढ़कर और गले से मिलकर) आइए आइए, कहिए कुशल तो है? किस देश को पवित्र करते हुए आते हैं?

**नारद**—आप से महापुरुष के दर्शन हों और फिर भी कुशल न हो, यह बात तो सर्वथा असम्भव है; और आप से तो कुशल पूछना ही व्यर्थ है।

**शुक०**—यह तो हुआ, अब कहिए आप आते कहाँ से हैं ?

**नारद**—इस समय तो मैं श्रीवृन्दावन से आता हूँ ।

**शुक०**—अहा ! आप धन्य हैं जो उस पवित्र भूमि से आते हैं । (पैर छूकर)
धन्य है उस भूमि की रज, कहिए वहाँ क्या-क्या देखा ?

**नारद**—वहाँ पर प्रेमानन्दमयी श्रीव्रजबल्लभी लोगों का दर्शन करके अपने को पवित्र किया और उनकी विरहावस्था देखता बरसों वहीं भूला पड़ा रहा । अहा, ये श्रीगोपीजन धन्य है । इनके गुणगण कौन कह सकता है—

गोपिन की सरि कोऊ नाही ।
जिन तृन-सम कुल-लाज-निगड़ सब तोख्यो हरिरस माही ॥
जिन निज बस कीने नँदनन्दन बिहरी दै गलबाँही ।
सब सन्तन के सीस रहो इन चरन-छत्र की छाँही ॥
ब्रज की लता पता मोहिं कीजै ।
गोपी-पद-पंकज-पावन की रज जामैं सिर भीजै ॥
आवत जात कुंज की गलियन रूप-सुधा नित पीजै ।
श्रीराधे राधे मुख, यह बर मुँहमाँग्यौ हरि दीजै ॥

(प्रेम-अवस्था में आते हैं और नेत्रों से आँसू बहते है)

**शुक०**—(अपने आँसू पोंछकर) अहा धन्य हैं आप, धन्य हैं, अभी जो मैं न सम्हालता तो वीणा आपके हाथ से छूटके गिर पड़ती । क्यों न हो, श्रीमहादेवजी की प्रीति के पात्र होकर आप ऐसे प्रेमी हों इसमें आश्चर्य नहीं ।

**नारद**—(अपने को सम्हालकर) अहा ! ये क्षण कैसे आनन्द से बीते हैं यह आपसे महात्मा की संगत का फल है ।

**शुक०**—कहिए, उन सब गोपियों मे प्रेम विशेष किसका है ?

**नारद**—विशेष किसका कहूँ और न्यून किसका कहूँ, एक से एक बढ़कर हैं । श्रीमती की कोई बात ही नहीं, वे तो श्रीकृष्ण ही है, लीलार्थ दो हो रही हैं; तथापि सब गोपियों में श्रीचन्द्रावलीजी के प्रेम की चर्चा आजकल ब्रज के डगर-डगर में फैली हुई है । अहा ! कैसा विलक्षण प्रेम है, यद्यपि माता-पिता, भाई-बन्धु सब निषेध करते हैं और उधर श्रीमतीजी का भी भय है, तथापि श्रीकृष्ण से जल में दूध की भाँति मिल रही हैं । लोकलाज, गुरुजन कोई बाधा नहीं कर सकते । किसी उपाय से श्रीकृष्ण से मिल ही रहती हैं ।

**शुक०**—धन्य हैं, धन्य ! कुल को, वरन् जगत् को अपने निर्मल प्रेम से पवित्र करनेवाली हैं।

(नेपथ्य मे वेणु का शब्द होता है)

अहा ! यह वंशी का शब्द तो और भी व्रजलीला की सुधि दिलाता है। चलिए, चलिए अब तो व्रज का वियोग सहा नहीं जाता; शीघ्र ही चलके उनका प्रेम देखे, उस लीला के बिना देखे आँखे व्याकुल हो रही है।

(दोनों जाते है)

**॥ इति प्रेममुख नामक विष्कम्भक ॥**

---

# पहिला अंक

(जवनिका उठी)

स्थान—श्रीवृन्दावन, गिरिराज दूर से दिखाता है

(श्रीचन्द्रावली और ललिता आती हैं)

**ललिता**—प्यारी, व्यर्थ इतना शोच क्यों करती है ?

**चन्द्रा०**—नहीं सखी ! मुझे शोच किस बात का है ।

**ललिता**—ठीक है, ऐसी ही तो हम मूर्ख हैं कि इतना भी नहीं समझती ।

**चन्द्रा०**—नहीं सखी ! मैं सच कहती हूँ, मुझे कोई शोच नहीं ।

**ललिता**—बलिहारी सखी ! एक तू ही तो चतुर है, हम सब तो निरी मूर्ख हैं ?

**चन्द्रा०**—नहीं सखी ! जो कुछ शोच होता तो मैं तुझसे कहती न । तुझसे ऐसी कौन बात है जो छिपाती ?

**ललिता**—इतनी ही तो कसर है, जो तू मुझे अपनी प्यारी सखी समझती तो क्यों छिपाती ?

**चन्द्रा०**—चल मुझे दुख न दे, भला मेरी प्यारी सखी तू न होगी तो और कौन होगी ?

**ललिता**—पर यह बात मुख से कहती है, चित्त से नहीं ।

**चन्द्रा०**—क्यों ?

**ललिता**—जो चित्त से कहती तो फिर मुझसे क्यों छिपाती ?

**चन्द्रा०**—नहीं सखी ! यह केवल तेरा झूठा सन्देह है ।

**ललिता**—सखी ! मैं भी इसी व्रज में रहती हूँ और सब के रंग-ढंग देखती ही हूँ । तू मुझसे इतना क्यों उड़ती है ? क्या तू समझती है कि मैं यह भेद किसी से कह दूँगी ? ऐसा कभी न समझना । सखी, तू तो मेरी प्राण है, मैं तेरा भेद किससे कहने जाऊँगी ?

**चन्द्रा०**—सखी ! भगवान् न करे कि किसी को किसी बात का सन्देह पड़ जाय; जिसको जो सन्देह पड़ जाता है वह फिर कठिनता से मिटता है ।

**ललिता**—अच्छा ! तू सौगन्द खा ।

**चन्द्रा०**—हाँ सखी ! तेरी सौगन्द ।

**ललिता**—क्या मेरी सौगन्द ?

**चन्द्रा०**—तेरी सौगन्द कुछ नहीं है।

**ललिता**—क्या कुछ नहीं है, फिर तू चली न अपनी चाल से? तेरी छलविद्या कहीं नहीं जाती, तू व्यर्थ इतना क्यों छिपाती है! सखी! तेरा मुखड़ा कहे देता है कि तू कुछ सोचा करती है।

**चन्द्रा०**—क्यों सखी! मेरा मुखडा क्या कहे देता है?

**ललिता**—यही कहे देता है कि तू किसी की प्रीति में फंसी है।

**चन्द्रा०**—बलिहारी सखी! मुझे अच्छा कलंक दिया।

**ललिता**—यह बलिहारी कुछ काम न आवेगी, अन्त में फिर मै ही काम आऊँगी और मुझीसे सब कुछ कहना पड़ेगा, क्योंकि इस रोग का वैद्य मेरे सिवा दूसरा कोई न मिलेगा।

**चन्द्रा०**—पर सखी! जब कोई रोग हो तब न?

**ललिता**—फिर वही बात कहे जाती है, अब क्या मैं इतना भी नहीं समझती! सखी! भगवान् ने मुझे भी आँखें दी हैं और मेरे भी मन है और मैं कुछ ईंट-पत्थर की नही हूँ।

**चन्द्रा०**—यह कौन कहता है कि तू ईंट-पत्थर की बनी है, इससे क्या?

**ललिता**—इससे यह कि इस ब्रज में रहकर उससे वही बची होगी जो ईंट-पत्थर की होगी।

**चन्द्रा०**—किससे?

**ललिता**—जिसके पीछे तेरी यह दशा है।

**चन्द्रा०**—किसके पीछे मेरी यह दशा है?

**ललिता**—सखी! तू फिर वही बात कहे जाती है। मेरी रानी, ये आँख ऐसी बुरी हैं कि जब किसी से लगती हैं तब कितना भी छिपाओ नहीं छिपतीं।

छिपाये छिपत न नैन लगे।
उघरि परत, सब जानि जात हैं घूँघट मैं न खगे।
कितनो करौ दुराव, दुरत नहीं जब ये प्रेम-पगे॥
निडर भए उघरे से डोलत मोहनरंग रँगे॥

**चन्द्रा०**—वाह सखी! क्यों न हो, तेरी क्या बात है। अब तू ही तो एक पहेली बूझनेवालों में बची है। चल, बहुत झूठ न बोल, कुछ भगवान् से भी डर।

**ललिता**—जो तू भगवान् से डरती तो झूठ क्यों बोलती? वाह सखी! अब तो तू बड़ी चतुर हो गई है। कैसा अपना दोष छिपाने को मुझे पहिले ही से झूठी बना दिया। (हाथ जोड़ कर) धन्य है, तू दण्डवत् करने के योग्य है।

कृपा करके अपना बाँयाँ चरण निकाल तो मैं भी पूजा करूं। चल मैं आज पीछे तुझसे कुछ न पूछूँगी।

**चन्द्रा०**—(कुछ सकपकानी सी होकर) नहीं सखी, तू क्यों झूठी है, झूठी तो मैं हूँ, और जो तू ही बात न पूछेगी तो कौन बात पूछेगा? सखी! तेरे ही भरोसे तो मैं ऐसी निडर रहती हूँ और तू ऐसी रूसी जाती है!

**ललिता**—नहीं, बस अब मैं कभी कुछ नहीं पूछने की। एक बेर पूछ कर फल पा चुकी।

**चन्द्रा०**—(हाथ जोड़कर) नहीं सखी! ऐसी बात मुँह से मत निकाल। एक तो मैं आप ही मर रही हूँ, तेरी बात सुनने से और भी अधमरी हो जाऊँगी। (आँखों मे आँसू भर लेती है)।

**ललिता**—प्यारी! तुझे मेरी सौगन्ध। उदास न हो, मैं तो सब भाँति तेरी हूँ और तेरे भले के हेतु प्राण देने को तैयार हूँ। यह तो मैने हँसी की थी। क्या मैं नही जानती कि तू मुझसे कोई बात न छिपावेगी और छिपावेगी तो काम कैसे चलेगा, देख!

हम भेद न जानिहै जो पै कछू,
आँ दुराव सखी हम मैं परिहै।
कहि कौन मिलैहै पियारे पियै,
पुनि कारज कासों सबै सरिहै॥
बिन मोसों कहै न उपाय कछू,
यह बेदन दूसरी को हरिहै।
नहिं रोगी बताइहै रोगहि जौ,
सखी बापुरो बैद कहा करिहै॥

**चन्द्रा०**—तो सखी, ऐसी कौन बात है जो तुझसे छिपी है? तू जानबूझ के बार-बार क्यों पूछती है? ऐसे पूछने को तो मुँह चिढ़ाना कहते हैं और इसके सिवा मुझे व्यर्थ याद दिलाकर क्यों दुःख देती है? हा!

**ललिता**—सखी! मैं तो पहिले ही समझी थी, यह तो केवल तेरे हठ करने से मैंने इतना पूछा, नहीं तो मैं क्या नहीं जानती?

**चन्द्रा०**—सखी, मैं क्या करूँ, मैं कितना चाहती हूँ कि यह ध्यान भुला दूँ, पर उस निठुर की छबि भूलती नहीं, इसीसे सब जान जाते हैं।

**ललिता**—सखी, ठीक है।

लगौंही चितवन औरहि होति।
दुरत न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति।
घूँघट मैं नहिं थिरत तनिक हूँ अति ललचौंही बानि।
छिपत न कैसहूँ प्रीति निगोड़ी अन्त जात सब जानि॥

**चन्द्रा०**—सखी, ठीक है, जो दोष है वह इन्हीं नेत्रों का है। यही रीझते, यही अपने को छिपा नहीं सकते और यही दुष्ट अन्त मे अपने किए पर रोते हैं।

सखी ये नैना बहुत बुरे।
तब सों भए पराये, हरि सों जब सों जाइ जुरे॥
मोहन के रस बस ह्वै डोलत तलफत तनिक दुरे।
मेरी सीख प्रीति सब छाँड़ी ऐसे ये निगुरे॥
जग खीझ्यौ बरज्यौ पै ये नहि हठ सों तनिक मुरे।
अमृत-भरे देखत कमलन से विष के बुते छुरे॥

**ललिता**—इसमें क्या सन्देह है। मुझ पर तो सब कुछ बीत चुकी है। मैं इनके व्यवहारों को अच्छी रीति से जानती हूँ। ये निगोड़े नैन ऐसे ही होते हैं।

होत सखि ये उलझौहैं नैन।
उरझि परत, सुरझ्यौ नहि जानत, सोचत समुझत हैं न॥
कोऊ नहिं बरजै जो इनको बनत मत्त जिमि गैन।
कहा कहौं इन वैरिन पाछे होत लैन के दैन॥

**चन्द्रा०**—और फिर इनका हट ऐसा है कि जिसकी छवि पर रीझते हैं उसे भूलते नहीं, और कैसे भूलें, क्या भूलने के योग्य है, हा!

नैना वह छबि नाहिंन भूले।
दया-भरी चहुँ दिसि की चितवनि नैन कमल-दल फूले॥
वह आवनि, वह हँसनि छबीली, वह मुसकनि चित चोरैं।
वह बतरानि, मुरनि हरि की वह, वह देखन चहु कोरैं॥
वह धीरी गति कमल फिरावन कर लै गायन पाछे।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे॥
परबस भए फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे।
हरि-ससि-मुख ऐसी छबि निरखत तनमन धन सब हारे॥

**ललिता**—सखी! मेरी तो यह बिपति भोगी हुई है। इससे मैं तुझे कुछ नहीं कहती; दूसरी होती तो तेरी निन्दा करती और तुझे इससे रोकती।

**चन्द्रा०**—सखी ! दूसरी होती तो मैं भी उससे यों एक संग न कह देती । तू तो मेरी आत्मा है । तू मेरा दुःख मिटावेगी कि उलटा समझावेगी ?

**ललिता**—पर सखी ! एक बड़े आश्चर्य की बात है कि जैसी तू इस समय दुखी है वैसी तू सर्वदा नही रहती ।

**चन्द्रा०**—नहीं सखी ! ऊपर से दुखी नही रहती पर मेरा जी जानता है जैसे रातें बीतती हैं ।

मनमोहन तें बिछुरी जब सों,
तन आँसुन सों सदा धोवती है ।
'हरिचन्द जू' प्रेम के फन्द परी,
कुल की कुल लाजहि खोवती है ॥
दुख के दिन को कोऊ भाँति बितै,
बिरहागम रैन सँजोवती है ।
हमही अपुनी दशा जानै सखी,
निसि सोवती हैं किधौं रोवती हैं ॥

**ललिता**—यह हो, पर मैंने तुझे जब देखा तब एक ही दशा में देखा और सर्वदा तुझे अपनी आरसी वा किसी दर्पण में मुँह देखते पाया पर वह भेद आज खुला ।

हौं तो याही सोच में बिचारत रही री काहे,
दरपन हाथ तें न छिन बिसरत है ।
त्योंही 'हरिचन्द जू' बियोग औ सँजोग दोऊ,
एक से तिहारे कछु लखि न परत है ॥
जानी आज हम ठकुरानी तेरी बात,
तू तौ परम पुनीत प्रेम पथ बिचरत है ।
तेरे नैन मूरति पियारे की बसति, ताहि,
आरसी मैं रैन-दिन देखिबो करत है ॥

सखी ! तू धन्य है, बड़ी भारी प्रेमिन है और प्रेम शब्द सार्थ करनेवाली और प्रेमियों की मण्डली की शोभा है ।

**चन्द्रा०**—नहीं सखी ! ऐसा नही है । मै जो आरसी देखती थी उसका कारण कुछ दूसरा ही है । हा ! (लम्बी साँस लेकर) सखी ! मैं जब आरसी में अपना मुँह देखती और अपना रंग पीला पाती थी तब भगवान् से हाथ जोड़कर मनाती थी कि भगवान् ! मैं उस निर्दयी को चाहूँ पर वह मुझे न चाहे, हा ! (आँसू टपकते हैं) ।

**ललिता**—सखी ! तुझे मैं क्या समझाऊँगी, पर मेरी इतनी विनती है कि तू उदास मत हो; जो तेरी इच्छा हो, पूरी करने को उद्यत हूँ।

**चन्द्रा०**—हा ! सखी यही तो आश्चर्य है कि मुझे कुछ इच्छा नहीं है और न कुछ चाहती हूँ। तो भी मुझको उसके वियोग का बड़ा दुःख होता है।

**ललिता**—सखी, मैं तो पहले ही कह चुकी कि तू धन्य है। संसार में जितना प्रेम होता है, कुछ इच्छा लेकर होता है और सब लोग अपने ही सुख में सुख मानते हैं, पर उसके विरुद्ध तू बिना इच्छा के प्रेम करती है और प्रीतम के सुख से सुख मानती है। यह तेरी चाल संसार से निराली है। इसीसे मैंने कहा था कि तू प्रेमियों के मण्डल को पवित्र करनेवाली है।

(चन्द्रावली नेत्रों में जल भरकर मुख नीचा कर लेती है)

(दासी आकर)

**दासी**—अरी ! मैया खीझ रही है के वाहि घरके कछू और हूँ काम-काज है के एक हाहा ठीठी ही है, चल उठि, भोर सों यहीं पड़ी रही।

**चन्द्रा०**—चल आऊँ, बिना बात की बकवाद लगाई। (ललिता से) सुन सखी ! इसकी बातें सुन, चल चलें। (लम्बी साँस लेकर उठती है)।

(तीनों जाती हैं)

**॥ स्नेहालाप नामक पहिला अंक समाप्त ॥**

---

# दूसरा अंक

स्थान—केले का वन

समय संध्या का, कुछ बादल छाए हुए

(वियोगिनी बनी हुई श्री चन्द्रावलीजी आती हैं)

चन्द्रा०—( एक वृक्ष के नीचे बैठकर ) वाह प्यारे ! वाह ! तुम और तुम्हारा प्रेम दोनो विलक्षण हैं; और निश्चय, बिना तुम्हारी कृपा के इसका भेद कोई नहीं जानता; जाने कैसे ? सभी उसके अधिकारी भी तो नहीं हैं। जिसने जो समझा है, उसने वैसा ही मान रखा है। हा ! यह तुम्हारा जो अखण्ड परमानन्दमय प्रेम है और जो ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शान्ति देनेवाला है उसका कोई स्वरूप ही नहीं जानता, सब अपने ही सुख में और अभिमान मे भुले हुए है; कोई किसी स्त्री से वा पुरुष से उसको सुन्दर देखकर चित्त लगाना और उससे मिलने के अनेक यत्न करना, इसीको प्रेम कहते है, और कोई ईश्वर की बड़ी लम्बी-चौड़ी पूजा करने को प्रेम कहते हैं—पर प्यारे ! तुम्हारा प्रेम इन दोनों से विलक्षण है, क्योंकि यह अमृत तो उसीको मिलता है जिसे तुम आप देते हो। (कुछ ठहरकर) हाय ! किससे कहूँ, और क्या कहूँ, और क्यों कहूँ, और कौन सुने और सुने भी तो कौन समझे—हा !

जग जानत कौन है प्रेम-बिथा,
केहि सों चरचा या बियोग की कीजिए।
पुनि को कही मानै कहा समुझै, कोउ,
क्यों बिन बात की रारहि लीजिए॥
नित जो 'हरिचन्द' जू' बीतै सहै,
बकिकै जग क्यों परतीतहि छीजिए।
सब पुछत मौन क्यों बैठि रही,
पिय प्यारे कहा इन्हैं उत्तर दीजिए॥

क्योंकि—

मरम की पीर न जानत कोय।
कासों कहौं कौन पुनि मानैं बैठि रहीं घर रोय॥

कोऊ जरनि न जाननहारी बे-महरम सब लोय।
अपुनी कहत सुनत नहिं मेरी केहि समुझाऊँ सोय॥
लोक-लाज कुल की मरजादा दीनी है सब खोय।
'हरीचंद' ऐसेहि निबहैगी होनो होय सो होय॥

परन्तु प्यारे, तुम तो सुननेवाले हो? यह आश्चर्य है कि तुम्हारे होते हमारी यह गति हो। प्यारे! जिनको नाथ नहीं होते वे अनाथ कहाते हैं। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) जो यही गति करनी थी तो अपनाया क्यों?

पहिले मुसुकाइ लजाइ कछू
क्यौं चितै मुरि मो तन छाम कियो।
पुनि नैन लगाइ बढ़ाइकै प्रीति
निबाहन को क्यौं कलाम कियो॥
'हरिचन्द' भए निरमोही इतै निज
नेह को यों परिनाम कियो।
मन माहिं जो तोरन ही की हुती,
अपनाइकै क्यों बदनाम कियो॥

प्यारे, तुम बड़े निरमोही हो। हा! तुम्हे मोह भी नहीं आता? (आँख में आँसू भरकर) प्यारे! इतना तो वे नहीं सताते जो पहिले सुख देते हैं; तो तुम किस नाते इतना सताते हो? क्योंकि—

जिय सूधी चितौन की साधे रही,
सदा बातन मैं अनखाय रहे।
हँसिकै 'हरिचन्द' न बोले कभूँ,
जिय दूरहि सों ललचाय रहे॥
नहिं नेकु दया उर आवत है,
करिकै कहा ऐसे सुभाय रहे।
सुख कौन सो प्यारे दियो पहिले,
जिहिके बदले यों सताय रहे॥

हा! क्या तुम्हें लाज भी नहीं आती? लोग तो सात पैर संग चलते हैं उसका जन्म भर निबाह करते हैं और तुमको नित्य की प्रीति का निबाह नहीं है! नहीं नहीं तुम्हारा तो ऐसा सुभाव नहीं था, यह नई बात है; यह बात नई है या तुम आप नये हो गये हो? भला कुछ तो लाज करो।

कित कौं ढरिगो वह प्यार सबै,
क्यों रुखाई नई यह साजत हौ।

'हरिचन्द' भए हौ कहा के कहा,
अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ ॥
नित को मिलनो तो किनारे रह्यो,
मुख देखत ही दुर्र भाजत हो।
पहिले अपनाइ बढ़ाइकै नेह,
न रूसिबे में अब लाजत हौ ॥

प्यारे ! जो यही गति करनी थी तो पहिले सोच लेते। क्योंकि—

तुम्हरे तुम्हरे सब कोऊ कहै,
तुम्हैं सो कहा प्यारे सुनात नहीं।
बिरुदावली आपुनी राखौ मिलौ,
मोहि सोचिबे की कोउ बात नहीं ॥
'हरिचन्द जू' होनी हुती सो भई,
इन बातन सों कछु होत नही।
अपनावते सोच बिचारि तबै,
जलपान कै पूछनो जात नहीं ॥

प्राणनाथ !—(आँखों मे आँसू उमड़ उठे) अरे नेत्रों ! अपने किए का फल भोगो।

धाइकै आगे मिलीं पहिले तुम,
कौन सों पूछिकै सो मोहि भाखौ।
त्यौं सब लाज तजी छिन मैं,
केहिके कहे एतो कियो अभिलाखौ ॥
काज बिगारि सबै अपनो
'हरिचन्द जू' धीरज क्यौं नहिं राखौ।
क्यों अब रोइकै प्रान तजौ,
अपुने किए को फल क्यों नहिं चाखौ ॥

हा !

इन दुखियान कों न सुख सपने हू मिल्यौ,
योंही सदा व्याकुल बिकल अकुलायँगी।
प्यारे 'हरिचन्द जू' की बीती जानि औध जौ पै
जैहैं प्रान तऊ ये तो साथ न समायँगी ॥
देख्यौ एक बार हू न नैन भरि तोहि यातें
जौन-जौन लोक जैहैं तहीं पछितायँगी ॥

बिना प्रानप्यारे भए दरस तुम्हारे हाय,
देखि लीजौ आँखें ये खुली ही रहि जायँगी।

परन्तु प्यारे, अब इनको दूसरा कौन अच्छा लगेगा जिसे देखकर यह धीरज धरेंगी, क्योंकि अमृत पीकर फिर छाछ कैसे पीयेंगी।

बिछुरे पिय के जग सूनो भयो,
अब का करिए कहि पेखिए का।
सुख छाड़िके संगम को तुम्हरे,
इन तुच्छन को अब लेखिए का॥
'हरिचन्द जू' हीरन को व्यवहार कै
काँचन को लै परेखिए का।
जिन आँखिन में तुव रूप बस्यो,
उन आँखिन सो अब देखिए का॥

इससे नेत्र! तुम तो अब बन्द ही रहो। (आँचल से नेत्र छिपाती है)।

(बनदेवी[1] सन्ध्या[2] और वर्षा[3] आती हैं)

**संध्या**—अरी बनदेवी! यह कौन आँखिनैं मूँदिकै अकेली या निरजन वन में बैठी रही है?

**बन०**—अरी का तू याहि नाँयँ जानै? यह राजा चन्द्रभानु की बेटी चन्द्रावली है।

**वर्षा**—तौ यहाँ क्यों बैठी है?

**बन०**—राम जानै। (कुछ सोचकर) अहा जानी! अरी, यह तो सदा ह्याँई बैठी बक्यौ करैहै और यह तो या बन के स्वामी के पीछे बावरी होय गई है।

**वर्षा**—तौ चलौ यासूँ कछू पूछै।

**बन०**—चल।

(तीनों पास जाती है)

**बन०**—(चन्द्रावली के कान के पास) अरी मेरी बन की रानी चन्द्रावली! (कुछ ठहरकर) राम! सुनैहू नहीं है! (और ऊँचे सुर से) अरी मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली! (कुछ ठहर कर) हाय! यह तो अपुने सों बाहर होय रही है। अब काहें कों सुनैगी। (और ऊँचे सुर से) अरी! सुनै नाँयनै री मेरी अलख लड़ैती चन्द्रावली!

---

१. हरा कपड़ा, पत्ते का किरीट, फूलों की माला।
२. गहिरा नारंजी कपड़ा।
३. रंग साँवला, लाल कपड़ा।

**चन्द्रा०**—(आँख बन्द किए ही) हाँ हाँ अरी क्यों चिल्लाय है ? चोर भाग जायगो—

**बन०**—कौन सो चोर ?

**चन्द्रा०**—माखन को चोर, चीरन को चोर और मेरे चित्त को चोर।

**बन०**—सो कहाँ सों भाग जायगो ?

**चन्द्रा०**—फेर बके जाय है, अरी मैंने अपनी ऑखिन मैं मूँदि राख्यौ है सो तू चिल्लायगी तो निकसि भागैगो।

(बनदेवी, चन्द्रावली की पीठपर हाथ फेरती है)

**चन्द्रा०**—(जल्दी से उठ, बनदेवी का हाथ पकड़कर) कहो प्राणनाथ ! अब कहॉ भागोगे ?

(बनदेवी हाथ छुड़ाकर एक ओर वर्षा-संध्या दूसरी ओर वृक्षों के पास हट जाती है)

**चन्द्रा०**—अच्छा ! क्या हुआ, यों ही हृदय से भी निकल जाओ तो जानूँ, तुमने हाथ छुड़ा लिया तो क्या हुआ मैं तो हाथ नही छोड़ने की। हा ! अच्छी प्रीति निबाही !

(बनदेवी सीटी बजाती है)

**चन्द्रा०**—देखो दुष्ट का, मेरा तो हाथ छुडाकर भाग गया, अब न जानें कहाँ खड़ा बंसो बजा रहा है। अरे छलिया कहाँ छिपा है ? बोल बोल कि जीते जी न बोलेगा ! (कुछ ठहरकर) मत बोल, मैं आप पता लगा लूँगी। (बन के वृक्षों से पूछती है) अरे वृक्षों ! बताओ तो मेरा लुटेरा कहाँ छिपा है ? क्यों रे मोरो, इस समय नहीं बोलते ? नही तो रात को बोल-बोल के प्राण खाए जाते थे। कहो न वह कहाँ छिपा है ?　　(गाती है)

अहो अहो बन के रूख कहूँ देख्यौ पिय प्यारो।
मेरो हाथ छुड़ाइ कहौ वह कितै सिधारो॥
अहो कदम्ब अहो अम्ब-निंब अहो बकुल-तमाला।
तुम देख्यो कहुँ मनमोहन सुन्दर नँदलाला॥
अहो कुंज बन लता बिरुध तृन पूछत तोसों।
तुम देखे कहुँ श्याम मनोहर कहहु न मोसों॥
अहो जमुना अहो खग मृग हो अहो गोबरधन गिरि।
तुम देखे कहुँ प्रानपियारे मनमोहन हरि॥

(एक एक पेड़ से जाकर गले लगती है। बनदेवी फिर सीटी बजाती है)

**चन्द्रा०**—अहा ! देखो उधर खड़े प्राणप्यारे मुझे बुलाते हैं तो चलो उधर ही चलें। (अपने आभरण सँवारती है)

(वर्षा और सन्ध्या पास आती हैं)

**वर्षा०**—(हाथ पकड़कर) कहाँ चली सजि कै ?—

**चन्द्रा०**—पियारे सों मिलन काज,—

**वर्षा०**—कहाँ तू खड़ी है ?—

**चन्द्रा०**—प्यारे ही को यह धाम है।

**वर्षा**—कहा कहै मुखसों ?—

**चन्द्रा०**—पियारे प्रान प्यारे—

**वर्षा०**—कहा काज है ?

**चन्द्रा०**—पियारे सों मिलन मोहि काम है ॥

**वर्षा०**—मैं हूँ कौन बोल तौ ?—

**चन्द्रा०**—हमारे प्रानप्यारे हौ न ?—

**वर्षा०**—तू है कौन ?—

**चन्द्रा०**—पीतम पियारो मेरो नाम है।

**सन्ध्या**—(आश्चर्य से) पूछत सखी एकै कै उत्तर बतावति जकी सी एक रू। आज श्यामा भई श्याम है।

(बनदेवी आकर चन्द्रावली की पीछे से आँख बन्द करती है)

**चन्द्रा०**—कौन है, कौन है ?

**बन०**—मैं हूँ।

**चन्द्रा०**—कौन तू है ?

**बन०**—(सामने आकर) मैं हूँ, तेरी सखी वृन्दा।

**चन्द्रा०**—तो मैं कौन हूँ ?

**बन०**—तू तो मेरी प्यारी सखी चन्द्रावली है न ? तू अपने हू को भूल गई।

**चन्द्रा०**—तो हम लोग अकेले बन में क्या कर रही हैं ?

**बन०**—तू अपने प्राणनाथै खोजि रही है न ?

**चन्द्रा०**—हा ! प्राणनाथ ! हा ! प्यारे ! प्यारे अकेले छोड़के कहाँ चले गए ? नाथ ! ऐसी ही बदी थी ! प्यारे यह वन इसी विरह का दुःख करने के हेतु बना है कि तुम्हारे साथ बिहार करने को ? हा !

जो पै ऐसिहि करन रही।
तो फिर क्यों अपने मुख सों तुम रस की बात कही ॥

हम जानी ऐसिहि बीतैगी जैसी बीति रही।
सो उलटी कीनी बिधिना ने कछू नाहिं निबही॥
हमैं बिसारि अनत रहे मोहन औरै चाल गही।
'हरीचन्द' कहा को कहा ह्वै गयो कछु नहिं जात कही॥

(रोती है)

**बन०**—(आँखों में आँसू भरके) प्यारी! अरी इतनी क्यों घबराई जाय है, देख तौ यह सखी खड़ी हैं सो कहा कहैंगी।

**चन्द्रा०**—ये कौन हैं?

**बन०**—(वर्षा को दिखाकर) यह मेरी सखी वर्षा है।

**चन्द्रा०**—यह वर्षा है तो हा! मेरा वह आनन्द का घन कहाँ है? हा! मेरे प्यारे! प्यारे कहाँ बरस रहे हौ? प्यारे गरजना इधर और बरसना और कहीं?

बलि साँवरी सूरत मोहनी मूरत
ऑखिन को कबौं आइ दिखाइए।
चातक सी मरैं प्यासी परी
इन्हैं पानिप रूप सुधा कबौं प्याइए॥
पीत पटै बिजुरी से कबौं
'हरिचन्द जू' धाइ इतै चमकाइए।
इतहू कबौं आइकै आनँद के घन
नेह को मेह पिया बरसाइए॥

प्यारे! चाहे गरजो चाहे लरजो, इन चातकों की तो तुम्हारे बिना और गति ही नहीं है, क्योंकि फिर यह कौन सुनेगा कि चातक ने दूसरा जल पी लिया; प्यारे! तुम तो ऐसे करुणा के समुद्र हो कि केवल हमारे एक जाचक के माँगने पर नदी-नद भर देते हो तो चातक के इस छोटे चंचुपुट भरने में कौन श्रम है; क्योंकि प्यारे हम दूसरे पक्षी नहीं हैं कि किसी भाँति प्यास बुझा लेंगे। हमारे तो हे श्याम घन! तुम्हीं अवलम्ब हौ; हा!

(नेत्रों में जल भर लेती है और तीनों परस्पर चकित होकर देखती हैं)

**बन०**—सखी, देखि तौ कछू इनकी हू सुन कछू इनकी हू लाज कर। अरी, यह तो नई आई हैं ये कहा कहैंगी?

**सन्ध्या**—सखी, यह कहा कहै है हम तौ याकौ प्रेम देखि बिन मोल की दासी होय रही हैं और तू पंडिताइन बनिकै ज्ञान छाँटि रही है।

**चन्द्रा०**—प्यारे ! देखो ये सब हँसती हैं—तो हँसें, तुम आओ, कहाँ बन में छिपे हो ? तुम मुँह दिखलाओ, इनको हँसने दो ।

धारन दीजिए धीर हिए कुलकानि को आजु बिगारन दीजिए ।
मारन दीजिए लाज सबै 'हरिचन्द' कलंक पसारन दीजिए ॥
चार चवाइन कों चहुँ ओर सों सोर मचाइ पुकारन दीजिए ।
छाँड़ि संकोचन चंद-मुखै भरि लोचन आजु निहारन दीजिए ॥

**क्योंकि**—

ये दुखियाँ सदा रोयो करैं बिधना इनको कबहूँ न दियो सुख ।
झूठहीं चार चवाइन के डर देख्यौ कियो उनहीं को लिये रुख ॥
छाँड़्यौ सबै 'हरिचन्द' तऊ न गयो जिय सों यह हाय महा दुख ।
प्रान बचैं केहि भाँतिन सों तरसैं जब दूर सों देखिबे कों मुख ॥

(रोती है)

**बन०**—(आँसू अपने आँचल से पोंछकर) तौ ये यहाँ नाँय रहिबे की, सखी !

एक घड़ी धीरज धर जब हम चली जायँ तब जो चाहियो सो करियो ।

**चन्द्रा०**—अरी सखियो मोहि छमा करियो, अरी देखौ तो तुम मेरे पास आई और हमने तुमारो कछू सिस्टाचार न कियो । (नेत्रों में आँसू भरकर हाथ जोड़कर) सखी ! मोहि छमा करियो और जानियो कि जहाँ मेरी बहुत सखी हैं उनमैं एक ऐसी कुलच्छिनी हू है ।

**सन्ध्या और वर्षा**—नहीं नहीं सखी, तू तो मेरी प्रानन सों हू प्यारी है, सखी हम सच कहैं तेरी सी साँची प्रेमिन एक हू न देखी, ऐसे तो सबी प्रेम करैं पर तू सखी धन्य है ।

**चन्द्रा०**—हाँ सखी, और (सन्ध्या को दिखाकर) या सखी को नाम का है ?

**बन०**—याको नाम सन्ध्या है ।

**चन्द्रा०**—(घबड़ाकर) सन्ध्यावली आई ? क्या कुछ सँदेसा लाई ? कहो, कहो प्राणप्यारे ने क्या कहा ? सखी बड़ी देर लगाई ? (कुछ ठहर कर) सन्ध्या हुई ? सन्ध्या हुई ? तो वह बन से आते होंगे । सखियो, चलो झरोखों में बैठें, यहाँ क्यों बैठी हौ ?

(नेपथ्य में चन्द्रोदय होता है; चन्द्रमा को देखकर)

अरे अरे वह देखो आया (उँगली से दिखाकर)

देख सखी देख अनमेख ऐसो भेख यह,
जाहि पेख तेज रबिहू को मंद ह्वै गयो ।

'हरीचन्द' ताप सब जिय को नसाइ चित्त
आनँद बढ़ाइ भाइ अति छकि सों छयो ॥
ग्वाल-उडुगन बीच बेनु को बजाई सुधा-
रस बरखाइ मान कमल लजा दयो ।
गोरज-समूह घन-पटल उघारि वह
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयो ॥

चलो चलो उधर चलो । (उधर दौड़ती है)

**बन०**—(हाथ पकड़कर) अरी बावरी भई है, चन्द्रमा निकस्यो है कै वह बन सों आवै है ?

**चन्द्रा०**—(घबड़ाकर) का सूरज निकस्यो ? भोर भयो ; हाय ! हाय ! हाय ! या गरमी में या दुष्ट सूरज की तपन कैसें सही जायगी । अरे भोर भयो, हाय भोर भयो ! सब रात ऐसे ही बीत गई ! हाय फेर वही घर के व्यौहार चलेंगे, फेर वही नहानो, वही खानो, वेई बातें हाय !

कैहिं पाप सों पापी न प्रान चलैं,
अटके कित कौन बिचार लयो ।
नहिं जानि परै 'हरिचंद' कछू
बिधि ने हम सों हठ कौन ठयो ॥
निसि आजहू की गई हाय बिहाय
पिया बिनु कैसे न जीव गयो ।
हत-भागिनी आँखिन कों नित के
दुख देखिबे कों फिर भोर भयो ॥

तो चलो घर चलें । हाय ! हाय ! माँ सों कौन बहाना करूँगी, क्योंकि वह जात ही पूछैगी कि सब रात अकेली बन मैं कहा करती रही । ( कुछ ठहर कर ) पर प्यारे ! भला यह तो बताओ कि तुम आज की रात कहाँ रहे ? क्यों देखो तुम हमसे झूठ बोले न ! बड़े झूठे हो, हा ! अपनों से तो झूठ मत बोला करो, आओ आओ अब तो आओ ।

आओ मेरे झूठन के सिरताज ।
छल के रूप कपट की मूरत मिथ्यावाद-जहाज ॥
क्यों परतिज्ञा करी रह्यौ जो ऐसो उलटो काज ।
पहिले तो अपनाइ न आवत तजिबे में अब लाज ॥

चलो दूर हटो बड़े झूठे हो ।

आओ मेरे मोहन प्यारे झूठे।
अपनी टारि प्रतिज्ञा कपटी उलटे हम सों रूठे॥
मति परसौ तन रँगे और के रंग अधर तुव जूठे।
ताहू पै तनिकौ नहिं लाजत निरलज अहो अनूठे॥

पर प्यारे बताओ तो तुम्हारे बिना रात क्यों इतनी बढ़ जाती है?

काम कछू नहि यासो हमै,
सुख सों जहाँ चाहिए रैन बिताइए।
पै जो करै बिनती 'हरिचन्द जू'
उत्तर ताको कृपा कै सुनाइए॥
एक मतो उनसो क्यौं कियो तुम
सोऊ न आवै जो आप न आइए।
रूसिबे सों पिय प्यारे तिहारे
दिवाकर रूसत है क्यों बताइए॥

जाओ जाओ मै नही बोलती। (एक वृक्ष की आड़ में दौड़ जाती है)

**तीनों**—भई यह तो बावरी सी डोलै, चलौ हम सब वृक्ष की छाया में बैठैं।
(किनारे एक पास ही तीनों बैठ जाती है)

**चंद्रा०**—(घबड़ाई हुई आती है, अचल, केश इत्यादि खुल जाते हैं) कहाँ गया? कहाँ गया? बोल! उलटा रूसना, भला अपराध मैंने किया कि तुमने? अच्छा मैंने किया सही, क्षमा करो, आओ, प्रगट हो, मुँह दिखाओ। भई, बहुत भई, गुदगुदाना वहाँ तक जहाँ तक रुलाई न आवै। (कुछ सोचकर) हा! भगवान् किसी को किसी की कनौड़ी न करै, देखो मुझको इसकी कैसी बातें सहनी पड़ती हैं; आप ही नहीं भी आता उलटा आप ही रूसता है, पर क्या करूँ अब तो फँस गई; अच्छा यों ही सही। ('अहो अहो बन के रूख' इत्यादि गाती हुई वृक्षों से पूछती है) हाय! कोई नहीं बतलाता। अरे, मेरे नित के साथियों, कुछ तो सहाय करो।

अरे पौन सुख-भौन सबै थल गौन तुम्हारो।
क्यौं न कहौ राधिकारौन सों मौन निवारो॥
अहे भँवर तुम श्याम रंग मोहन व्रत-धारी।
क्यौं न कहौ वा निठुर श्याम सों दसा हमारी॥
अहे हँस तुम राजबंस सरवर की सोभा।
क्यौं न कहो मेरे मानस सों या दुख के गोभा॥

हे सारस तुम नीकें बिछुरन बेदन जानौ।
तौ क्यों पीतम सों नहिं मेरी दसा बखानौ॥
हे कोकिल-कुल स्याम रंग के तुम अनुरागी।
क्यौं नहिं बोलहु तहीं जाय जहँ हरि बड़भागी॥
हे पपिहा तुम पिउ पिउ पिय पिय रटत सदाई।
आजहु क्यों नहि रटि रटि के पिय लेहु बुलाई॥
अहे भानु तुम तो घर-घर मे किरिन प्रकासो।
क्यौं नहि पियहिं मिलाइ हमारो दुख तम नासो॥

हाय!

कोउ नहिं उत्तर देत भए सबही निरमोही।
प्रानपियारे अब बोलौ कहाँ ग्वोजौं तोही॥

(चन्द्रमा बदली की ओट हो जाता है और बादल छा जाते हैं)

(स्मरण करके) हाय! मैं ऐसी भूली हुई थी कि रात को दिन बतलाती थी, अरे मैं किसको ढूँढ़ती थी? हा! मेरी इस मूर्खता पर उन तीनों सखियो ने क्या कहा होगा। अरे यह तो चन्द्रमा था जो बदली की ओट मे छिप गया। हा! यह हत्यारिन बरषा रितु है, मै तो भूल ही गई थी। इस अँधेरे मे मार्ग तो दिखाता ही नही; चलूँगी कहाँ और घर कैसे पहुँचूँगी? प्यारे देखो, जो-जो तुम्हारे मिलने में सुहावने जान पड़ते थे वही अब भयावने हो गए। हा! जो बन आँखों से देखने में कैसा भला दिखाता था वही अब कैसा भयंकर दिखाई पड़ता है। देखो सब कुछ है एक तुम्हे नही हौ। (नेत्रों से आँसू गिरते हैं) प्यारे! छोड़ के कहाँ चले गए? नाथ! आँखें बहुत प्यासी हो रही है इनको रूप-सुधा कब पिलाओगे? प्यारे! बेनी की लट बँध गई है इन्हें कब सुलझाओगे! (रोती है) नाथ, इन आँसुओं को तुम्हारे बिना और कोई पोंछनेवाला भी नहीं है। हा! यह गत तो अनाथ की भी नही होती। अरे बिधिना! मुझे कौन सा सुख दिया था जिसके बदले इतना दुःख देता है, सुख का तो मैं नाम सुनके चौंक उठती थी और धीरज धरके कहती थी कि कभी तो दिन फिरेंगे सो अच्छे दिन फिरें! प्यारे! बस बहुत भई अब नहीं सही जाती। मिलना हो तो जीते जी मिल जाओ। हाय! जो भर आँखों देख भी लिया होता तो जी का उमाह निकल गया होता। मिलना दूर रहे, मैं तो मुँह देखने को तरसती थी, कभी सपने में भी गले न लगाया, जब सपने में देखा तभी घबड़ा कर चौंक उठी। हाय! इन घरवालों और बाहरवालों के पीछे कभी उनसे रो-रोकर अपनी बिपत भी न सुनाई कि जी भर जाता। लो घरवालों और बाहरवालों! ब्रज को सम्हालो

मैं तो अब यहीं···(कण्ठ गद्गद होकर रोने लगती है) हाय रे निठुर ! मैं ऐसा निरमोही नहीं समझी थी, अरे इन बादलों की ओर देख के तो मिलता। इस ऋतु मे तो परदेसी भी अपने घर आ जाते हैं पर तू न मिला। हा ! मैं इसी दुख को देखने को जीती हूँ कि बरषा आवे और तुम न आओ। हाय ! फेर बरषा आई, फेर पत्ते हरे हुए, फेर कोइल बोली, पर प्यारे तुम न मिले ! हाय ! सब सखियाँ हिंडोले झूलती होंगी, पर मैं किसके संग झूलूँ, क्योंकि हिंडोला झुलाने वाले मिलेंगे, पर आप भींजकर मुझे बचानेवाला और प्यारी कहनेवाला कौन मिलेगा ? (रोती है) हा ! मैं बड़ी निर्लज्ज हूँ। अरे प्रेम ! मैंने प्रेमिन बनकर तुझे भी लज्जित किया कि अब तक जीती हूँ, इन प्रानों को अब न जाने कौन लाहे लूटने हैं कि नहीं निकलते। अरे कोई देखो, मेरी छाती वज्र की तो नहीं है कि अब तक···(इतना कहते ही मूर्छा खाकर ज्योंही गिरा चाहती है उसी समय तीनों सखियाँ सम्हालती हैं)।

(जवनिका गिरती है)

**॥ प्रियान्वेषण नामक दूसरा अंक समाप्त ॥**

# दूसरे अंक के अंतर्गत

## अंकावतार

स्थान—बीथी, वृक्ष

( संध्यावली दौड़ी हुई आती है )

**संध्या०**—राम राम ! मैं तो दौरत दौरत हार गई, या ब्रज की गऊ का हैं साँड़ हैं; कैसी एक साथ पूँछ उठाय कै मेरे संग दौरी हैं, तापैं वा निपूते सुबल को बुरो होय, और हू तूमड़ी बजाय कै मेरी ओर उन सबन को लहकाय दीनों, अरे जो मैं एक संग प्रान छोड़ि कै न भाजती तौ उनके रपट्टा में कब की आय जातो। देखि आज वा सुबल की कौन गति कराऊँ, बड़ो ढीठ भयो है, प्रानन की हॉसी कौन काम की। देखौं तौ आज सोमवार है नंदगाँव मे हाट लगी होयगी मैं वहीं जाती, इन सबन ने बीच ही आय धरी, मैं चन्द्रावली की पाती वाके यारें सौंप देती तो इतनो खुटकोऊ न रहतो। (घबड़ाकर) अरे आईं ये गौवें तो फेर इतैही कूँ अरराईं।

(दौड़कर जाती है और चोली मे से पत्र गिर पड़ता है। चंपकलता आती है)

**चंपक०**—(पत्र गिरा हुआ देखकर) अरे ! यह चिट्ठी किसकी पड़ी है, किसी की हो, देखूँ तो इसमे क्या लिखा है ? (उठाकर देखती है) राम राम ! न जाने किस दुखिया की लिखी है कि आँसुओं से भींजकर ऐसी चिपट गई है कि पढ़ी ही नहीं जाती और खोलने मे फटी जाती है। (बड़ी कठिनाई से खोलकर पढ़ती है)

"प्यारे !

क्या लिखूँ ! तुम बड़े दुष्ट हौ, चलो, भला सब अपनी वीरता हमीं पर दिखानी थी। हाँ ! भला मैंने तो लोक-वेद, अपना-बिराना सब छोड़कर तुम्हे पाया, तुमने हमें छोड़कर क्या पाया ? और जो धर्म उपदेश करो तो धर्म से फल होता है, फल से धर्म नहीं होता। निर्लज, लाज भी नहीं आती, मुँह ढँको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो। चलो वाह ! अच्छी प्रीति निबाही। जो हो, तुम जानते ही हौ, हाय कभी न करूँगी योंहीं सही, अंत मरना है, मैंने अपनी ओर से खबर दे दी, अब मेरा दोष नहीं, बस।

"केवल तुम्हारी"

(लंबी साँस लेकर) हा ! बुरा रोग है, न करै कि किसी के सिर बैठे-बिठाए यह चक्र घहराय । इस चिट्ठी के देखने से कलेजा काँपा जाता है । बुरा ! तिसमें स्त्रियों की बड़ी बुरी दशा है, क्योंकि कपोतव्रत बुरा होता है कि गला घोंट डालो मुँह से बात न निकले । प्रेम भी इसीका नाम है । राम राम ! उस मुँह से जीभ खींच ली जाय जिससे हाय निकले । इस व्यथा को जानती हूँ और कोई क्या जानेगा क्योंकि "जाके पाँव न भई बिवाई सो क्या जाने पीर पराई" । यह तो हुआ पर यह चिट्ठी है किसकी ? यह न जान पड़ी (कुछ सोचकर) अहा जानी ! निश्चय यह चन्द्रावली का चिह्न भी बनाया है । हा ! मेरी सखी बुरी फँसी । मैं तो पहिले ही उसके लच्छनों जान गई थी, पर इतना नहीं जानती थी; अहा गुप्त प्रीति भी विलक्षण होती है, देखो इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं । मनुष्य न इधर का होता न उधर का । संसार के सुख छोड़कर अपने हाथ आप मूर्ख बन जाता है । जो हो, यह पत्र तो मैं आप उन्हें जाकर दे आऊँगी और मिलने की भी विनती करूँगी ।

(नेपथ्य में बूढ़ों के से सुर से)

हाँ तू सब करेगी ।

**चंप०**—(सुनकर और सोचकर) अरे यह कौन है । (देखकर) न जानै कोऊ बूढ़ी फूस-सी डोकरी है । ऐसो न होय कै यह बात फोड़ि कै उलटी आग लगावै, अब तो पहिलै याहि समझावनो परयो, चलूँ । (जाती है)

॥ भेद प्रकाशन नामक अंकावतार ॥

# तीसरा अंक

स्थान—तालाब के पास एक बगीचा

(समय तीसरा पहर, गहिरे बादल छाए हुए)

(झूला पड़ा है, कुछ सखी झूलती, कुछ इधर-उधर फिरती हैं)

(चन्द्रावली, माधवी, काममंजरी, विलासिनी इत्यादि एक स्थान पर बैठी हैं, चंद्रकाँता, वल्लभा, श्यामला, भामा झूले पर हैं, कामिनी और माधुरी हाथ मे हाथ दिए घूमती है।)

**कामिनी**—सखी, देख बरसात भी अब की किस धूमधाम से आई है मानो काम-देव ने अबलाओं को निर्बल जानकर इनके जीतने को अपनी सेना भिजवाई है। धूम से चारों ओर घूम-घूमकर बादल परे के परे जमाए बगपंगति का निशान उड़ाए लपलपाती नगी तलवार-सी बिजली चमकाते गरज गरज कर डराते बान के समान पानी बरखा रहे है और इन दुष्टों का जी बढ़ाने को मोर करखा-सा कुछ अलग पुकार-पुकार गा रहे है। कुल की मरजाद ही पर इन निगोड़ों की चढ़ाई है। मनोरथों से कलेजा उमगा आता है और काम की उमंग जो अग अंग में भरी हैं उनके निकले बिना जी तिलमिलाता है। ऐसे बादलों को देखकर कौन लाज की चद्दर रख सकती है और कैसे पतिव्रत पाल सकती है।

**माधुरी**—विशेष कर वह जो आप कामिनी हो। (हँसती है)

**कामिनी**—चल तुझे हँसने ही की पड़ी है। देख, भूमि चारों ओर हरी-हरी हो रही है। नदी-नाले बावली-तालाब सब भर गए। पच्छी लोग पर समेटे पत्तों की आड़ मे चुप-चाप सकपके से होकर बैठे हैं। बीरबहूटी और जुगनूँ पारी-पारी रात और दिन को इधर-उधर बहुत दिखाई पड़ते हैं। नदियों के करारे धमाधम टूटकर गिरते हैं। सर्प निकल-निकल कर अशरण से इधर-उधर भागे फिरते हैं। मार्ग बन्द हो रहे हैं। परदेसी जो जिस नगर में हैं वहीं पड़े-पड़े पछता रहे हैं, आगे बढ़ नहीं सकते। वियोगियों को तो मानों छोटा प्रलय-काल ही आया है।

**माधुरी**—छोटा क्यों बड़ा प्रलयकाल आया है। पानी चारों ओर से उमड़ ही रहा है। लाज के बड़े-बड़े जहाज गारद हो चुके, भया फिर वियोगियों के हिसाब से तो संसार डूबा ही है, तो प्रलय ही ठहरा।

**कामिनी**—पर तुझको तो वटेकृष्ण का अवलम्ब है न, फिर तुझे क्या, भाँडीर वट के पास उस दिन खड़ी बात कर ही रही थी, गए हम—

**माधुरी**—और चन्द्रावली ?

**कामिनी**—हाँ चन्द्रावली विचारी तो आप ही गई बीती है, उसमें भी अब तो पहरे मे है, नजरबन्द रहती है, झलक भी नहीं देखने पाती, अब क्या—

**माधुरी**—जान दे नित्य का झगड़ना । देख, फिर पुरवैया झकोरने लगी और वृक्षों से लपटी लताएँ फिर से लरजने लगीं । साड़ियों के आँचल और दामन फिर उड़ने लगे और मोर लोगों ने एक साथ फिर शोर किया । देख यह घटा अभी गरज गई थी पर फिर गरजने लगी ।

**कामिनी**—सखी बसन्त का ठंढा पवन और सरद की चाँदनी से राम राम करके वियोगियों के प्राण बच भी सकते हैं, पर इन काली-काली घटा और पुरवैया के झोंके तथा पानी के एकतार झमाके से तो कोई भी न बचेगा ।

**माधुरी**—तिसमे तू तो कामिनी ठहरी, तू बचना क्या जाने ।

**कामिनी**—चल ठटोलिन । तेरी आँखों में अभी तक उस दिन की खुमारी भरी है, इसी से किसी को कुछ नहीं समझती । तेरे सिर बीते तो मालूम पड़े ।

**माधुरी**—बीती है मेरे सिर । मैं ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़ूँ ।

**कामिनी**—चल, तू हई है क्या कि न उबल पड़ेगी । स्त्री की बिसात ही कितनी बड़े-बड़े जोगियों के ध्यान इस बरसात में छूट जाते है, कोई जोगी होने ही पर मन ही मन पछताते है, कोई जटा पटककर हाय-हाय चिल्लाते हैं, और बहुतेरे तो तूमड़ी तोड़-तोड़कर जोगी से भोगी हो ही जाते हैं ।

**माधुरी**—तो तू भी किसी सिद्ध से कान फुँकवाकर तूमड़ी तोड़वा ले ।

**कामिनी**—चल ! तू क्या जाने इस पीर को । सखी, यही भूमि और यही कदम कुछ दूसरे ही हो रहे हैं और यह दुष्ट बादल मन ही दूसरा किए देते हैं । तुझे प्रेम हो तब सूझे । इस आनन्द की धुनि में संसार ही दूसरा एक विचित्र शोभावाला और सहज काम जगानेवाला मालूम पड़ता है ।

**माधुरी**—कामिनी पर काम का दावा है । इसी से हेर-फेर उसी को बहुत छेड़ा करता है ।

( नेपथ्य में बारम्बार मोर कूँकते हैं )

**कामिनी**—हाय-हाय ! इस कठिन कुलाहल से बचने का उपाय एक विषपान ही है । इन दईमारों का कूकना और पुरवैया का झकझोर कर चलना यह दो बातें बड़ी कठिन हैं । धन्य हैं वे जो ऐसे समय में रङ्ग-रङ्ग के कपड़े पहिने ऊँची-ऊँची अटारियों पर चढ़ी पीतम के संग घटा और हरियाली देखती हैं

वा बगीचों, पहाड़ों और मैदानों में गलबाहीं डाले फिरती हैं। दोनों परस्पर पानी बचाते हैं और रङ्गीन कपड़े निचोड़ कर चौगुना रङ्ग बढ़ाते हैं। झूलते हैं, झुलाते हैं, हँसते हैं, हँसाते हैं, भींगते हैं, भिगाते हैं, गाते हैं, गवाते हैं, और गले लगते हैं, लगाते हैं।

**माधुरी**—और तेरो न कोई पानी बचानेवाला, न तुझे कोई निचोड़ने वाला, फिर चौगुने की कौन कहे ड्यौढ़ा सवाया तो तेरा रंग बढ़ेहीगा नहीं।

**कामिनी**—चल लुच्चिन! जाके पायें न भई बिवाई सो क्या जानै पीर पराई।

(बात करती-करती पेड़ की आड़ में चली जाती है)

**माधवी**—(चन्द्रावली से) सखी श्यामला का दर्शन कर, देख कैसी सुहावनी मालूम पड़ती है। मुखचंद्र पर चूनरी चुई पड़ती है। लटें सगबगी होकर गले में लपट रही है। कपड़े अग में लपट गए हैं। भींगने से मुख का पान और काजल सबकी एक विचित्र शोभा हो गई है।

**चंद्रा**—क्यों न हो। हमारे प्यारे की प्यारी है। मैं पास होती तो दोनों हाथों से इसकी बलैया लेती और छाती से लगाती।

**का० मं०**—सखी, सचमुच आज तो इस कदंब के नीचे रंग बरस रहा है। जैसा समा बँधा है वैसी ही झूलने वाली हैं। झूलने में रंग-रंग की साड़ी की अर्द्ध-चंद्राकार रेखा इन्द्रधनुष की छबि दिखाती है। कोई सुख से बैठी झूले की ठण्ढी-ठण्ढी हवा खा रही है, कोई गाँती बाँधे लाँग कसे पेंग मारती है, कोई गाती है, कोई डरकर दूसरी के गले मे लपट जाती है, कोई उतरने को अनेक सौगन्द देती है, पर दूसरी उसको चिढ़ाने को झूला और भी झोंके से झुला देती है।

**माधवी**—हिंडोरा ही नहीं झूलता। हृदय में प्रीतम को झुलाने के मनोरथ और नैनों में पिया की मूर्ति भी झूल रही है। सखी, आज साँवला ही की मेंहदी और चूनरी पर तो रंग है। देख बिजुली की चमक में उसकी मुखछबि कैसी सुन्दर चमक उठती है और वैसे पवन भी बार-बार घूँघट उलट देता है।

देख—

हूलति हिये में प्रानप्यारे के बिरह-सूल
फूलति उमंगभरी झूलति हिंडोरे पै।
गावति रिझावति हँसावति सबन 'हरि-
चंद' चाव चौगुनो बढ़ाइ घन घोरे पै॥
वारि वारि डारौं प्रान हँसनि मुरनि बत-
रान मुँह पान कजरारे दृग डोरे पै।

ऊनरी घटा मैं देखि दूनरी लगी है आहा
कैसी आजु चूनरी फबी है मुख गोरे पै ॥

**चन्द्रा०**—सखियो, देखो कैसो अन्धेर और गजब है कि या रुत मैं सब अपने मनोरथ पूरो करैं और मेरी यह दुरगत होय ! भलो काहुवै तो दया आवती । (आँखों मे आँसू भर लेती है )

**माधवी**—सभी, तू क्यो उदास होय है । हम सब कहा करैं, हम तो आज्ञा-कारिणी ठहरी, हमारो का अग्वत्यार है तऊ हममैं सों तो कोऊ कछू तोहि नायँ कहै ।

**का० म०**—भलो सखी, हम याहि कहा कहैंगी ! याहू तो हमारी छोटी स्वामिनी ठहरी ।

**विलासिनी**—हॉ सखी ! हमारी तो दोऊस्वामिनी हैं । सखी ! बात यह है कै खराबी तो हम लोगन की है, ये दोऊ फेर एक की एक होयँगी । लाठी मारवे सों पानी थोरों हूँ जुदा होयगो, पर अभी जो सुन पावैं कि ढिमकी सखी ने चन्द्रावलिये अकेलि छोड़ि दीनी तो फेर देखौ तमासा ।

**माधवी**—हम्बै बीर । और फेर कामहू तौ हमी सब बिगारैं । अब देखि कौन नै स्वामिनी सों चुगली खाई । हमारेई तुमारे मे सों वहू है । सखी चन्द्रावलिये जो दुःख देयगी वह आप दुःख पावैगी ।

**चन्द्रा०**--(आप ही आप) हाय ! प्यारे, हमारी यह दशा होती है और तुम तनिक नहीं ध्यान देते । प्यारे, फिर यह शरीर कहॉ और हम-तुम कहॉ ? प्यारे, यह संजोग हमको तो अब की ही बना है, फिर यह बातें दुर्लभ हो जायेंगी । हाय नाथ ! मैं अपने इन मनोरथों को किसको सुनाऊँ और अपनी उमंगें कैसे निकालूँ ! प्यारे, रात छोटी है और स्वाँग बहुत है । जीना थोड़ा और उत्साह बड़ा । हाय ! मुझ-सी मोह में डूबी को कहीं ठिकाना नहीं । रात-दिन रोते ही बीतते है । कोई बात पूछनेवाला नहीं, क्योंकि संसार में जी कोई नहीं देखता, सब ऊपर ही की बात देखते हैं । हाय ! मैं तो अपने-पराए सबसे बुरी बनकर बेकाम हो गई । सबको छोड़ कर तुम्हारा आसरा पकड़ा था सो तुमने यह गति की । हाय ! मैं किसकी होके रहूँ, मैं किसका मुँह देखकर जिऊँ । प्यारे, मेरे पीछे कोई ऐसा चाहनेवाला न मिलेगा । प्यारे, फिर दीया लेकर मुझको खोजोगे । हा ! तुमने विश्वासघात किया । प्यारे, तुम्हारे निर्दयीपन की भी कहानी चलेगी । हमारा तो कपोत-व्रत है । हाय स्नेह लगाकर दगा देने पर भी सुजान कहलाते हो । बकरा जान से गया, पर खानेवाले को स्वाद न मिला !

हाय ! यह न समझा था कि यह परिणाम करोगे। वाह ! खूब निबाह किया। बधिक भी बधकर सुध लेता है, पर तुमने न सुध ली। हाय ! एक बेर तो आकर अक में लगा जाओ। प्यारे, जीते जी आदमी का गुन नहीं मालूम होता। हाय ! फिर तुम्हारे मिलने को कौन तरसेगा और कौन रोएगा। हाय ! संसार छोड़ा भी नहीं जाता। सब दुःख सहती हूँ, पर इसी में फँसी पड़ी हूँ। हाय नाथ ! चारों ओर से जकड़ कर ऐसी बेकाम क्यों कर डाली है। प्यारे, यों ही रोते दिन बीतेंगे। नाथ ! यह हौस मन की मन ही में रह जायगी। प्यारे, प्रगट होकर ससार का मुँह क्यों नहीं बन्द करते और क्यों शंकाद्वार खुला रखते हो ? प्यारे, सब दीनदयालुता कहाँ गई ! प्यारे, जल्दी इस ससार से छुड़ाओ। अब नहीं सही जाती। प्यारे, जैसी हैं, तुम्हारी हैं। प्यारे, अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ। नाथ, जहाँ इतने गुन सीखे वहाँ प्रीति निबाहना क्यो न सीखा ? हाय ! मँझधार मे डुबाकर ऊपर से उतराई माँगते हो; प्यारे सो भी दे चुकी, अब तो पार लगाओ। प्यारे, सब्रकी हद होती है। हाय ! हम तड़पें और तुम तमाशा देखो। जन-कुटुम्ब से छुड़ाकर यो छितर-बितर करके बेकाम कर देना यह कौन बात है। हाय ! सबकी आँखो मे हलकी हो गई। जहाँ जाओ वहाँ दुर दुर, उस पर यह गति ! हाय ! "भामिनी तें भौंड़ी करी, मानिनी तें मौड़ी करी, कौड़ी करी हीरा तें, कनौड़ी करी कुल तें।" तुम पर बड़ा क्रोध आता है और कुछ कहने को जी चाहता है। बस अब मैं गाली दूँगी। और क्या कहूँ, बस आप आप ही हो, देखो गाली में भी तुम्हें मैं मर्मवाक्य कहूँगी—झूठे, निर्दय, निर्घृण, "निर्दय हृदय कपाट", बखेड़िये और निर्लज्ज, ये सब तुम्हें सच्ची गालियाँ हैं; भला जो कुछ करना ही नहीं था तो इतना क्यों झूठ बके ? किसने बकाया था ? कूद-कूदकर प्रतिज्ञा करने बिना क्या डूबी जाती थी ? झूठे ! झूठे !! झूठे !!! झूठे ही नहीं वरंच विश्वासघातक ! क्यों इतनी छाती ठोंक और हाथ उठा-उठाकर लोगों को विश्वास दिया ? आप ही सब मरते चाहे जहन्नुम में पड़ते, और उस पर तुर्रा यह है कि किसी को चाहे कितना भी दुखी देखें आपको कुछ घृणा तो होती ही नहीं। हाय-हाय कैसे-कैसे दुखी लोग हैं—और मजा तो यह है कि सब धान बाइस पसेरी। चाहे आपके वास्ते दुखी हो, चाहे अपने संसार के दुःख से; आपको दोनों उल्लू फँसे हैं। इसीसे तो "निर्दय हृदय कपाट" यह नाम है। भला क्या काम था कि इतना पचड़ा किया ? किसने इस उपद्रव और जाल करने को कहा था ?

कुछ न होता, तुम्हीं तुम रहते बस चैन था, केवल आनन्द था, फिर क्यों यह विषमय संसार किया। बखेड़िये ! और इतने बड़े कारखाने पर बेहयाई परले सिरे की। नाम बिके, लोग झूठा कहें, अपने मारे फिरें, आप भी अपने मुँह झूठे बनें, पर वाह रे शुद्ध बेहयाई और पूरी निर्लज्जता ! बेशरमी हो तो इतनी तो हो। क्या कहना है ! लाज को जूतों मार के पीट-पीट के निकाल दिया है। जिस मुहल्ले में आप रहते हैं उस मुहल्ले मे लाज की हवा भी नहीं जाती। जब ऐसे हो तब ऐसे हो। हाय ! एक बेर भी मुँह दिखा दिया होता तो मतवाले मत-वाले बने क्यों लड़-लड़कर सिर फोड़ते। अच्छे खासे अनूठे निर्लज्ज हो, काहे को ऐसे बेशरम मिलेंगे, हुकुमी बेहया हो, कितनी गाली दूँ, बड़े भारी पूरे हो, शरमाओगे थोड़े ही कि माथा खाली करना सुफल हो, जाने दो—हम भी तो वैसी ही निर्लज्ज और झूठी है। क्यों न हों। जस दूलह तस बनी बराता। पर इसमें भी मूल उपद्रव तुम्हारा ही है, पर यह जान रखना कि इतना और कोई न कहेगा, क्योंकि सिपारसी नेति नेति कहेंगे, सच्ची थोड़े ही कहेंगे। पर यह तो कहो कि यह दुःखमय पचड़ा ऐसा ही फैला रहेगा कि कुछ तै भी होगा, वा न तै होय। हमको क्या ? पर हमारा तो पचड़ा छुड़ाओ। हाय मैं किससे कहती हूँ। कोई सुननेवाला है। जंगल में मोर नाचा किसने देखा। नहीं नहीं वह सब देखता है, वा देखता होता तो अब तक मेरी खबर न लेता। पत्थर होता तो वह भी पसीजता। नहीं, नहीं मैंने प्यारे को इतना दोष व्यर्थ दिया। प्यारे, तुम्हारा दोष कुछ नहीं। यह सब मेरे करम का दोष है। नाथ, मैं तो तुम्हारी नित्य की अपराधिनी हूँ। प्यारे, क्षमा करो। मेरे अपराधों की ओर न देखो, अपनी ओर देखो। (रोती है)

**माधवी**—हाय-हाय सखियों ! यह तो रोय रही है।

**काम मं०**—सखी प्यारी ! रोवै मती। सखी तोहि मेरे सिर की सौंह जो रोवै।

**माधवी**—सखी, मैं तेरे हाथ जोड़ूँ मत रोवै। सखी ! हम सबन को जीव भरयो आवै है।

**विला०**—सखी, जो तू कहैगी हम सब करैंगी। हम भले ही प्रियाजो की रिस सहैंगी, पर तोसूँ हम सब काहू बात सों बाहर नहीं।

**माधवी**—हाय-हाय ! यह तो मानै ही नहीं। (आँसू पोंछकर) मेरी प्यारी, मैं हाथ जोड़ूँ हा हा खाऊँ, मानि जा।

**काम मं०**—सखी यासों मति कछू कहौ। आओ हम सब मिलि कै विचार करैं जासों याको काम होय।

**विला०**—सखी, हमारे तो प्रान ताईं यापैं निछावर हैं पर जो कछू उपाय सूझै।

**चन्द्रा०**—(रोकर) सखी, एक उपाय मुझे सूझा है जो तुम मानो।

**माधवी**—सखी, क्यों न मानैगी तू कहै क्यों नहीं।

**चन्द्रा**—सखी, मुझे यहाँ अकेली छोड़ जाओ।

**माधवी**—तो तू अकेली यहाँ का करेगी ?

**चन्द्रा**—जो मेरी इच्छा होगी।

**माधवी**—भलो तेरी इच्छा का होयगी हमहूँ सुनैं ?

**चन्द्रा**—सखी, वह उपाय कहा नहीं जाता।

**माधवी**—तौ का अपनो प्रान देगी। सखी, हम ऐसी भोरी नहीं है कै तोहि अकेली छोड़ जायँगी।

**विला०**—सखी, तू व्यर्थ प्रान देने को मनोरथ करै है, तेरे प्रान तोहि न छोड़ैगे। जौ प्रान तोहि छोड़ जायँगे तो इनको ऐसो सुन्दर शरीर फेर कहाँ मिलैगो।

**का० मं०**—सखी, ऐसी बात हम सूँ मति कहै, और जो कहै सो सो हम करिबे को तयार हैं, और या बात को ध्यान तू सपने हू मैं मति करि। जब ताईं हमारे प्रान है तब ताईं तोहि न मरन देंयगी। पीछे भलेईं जो होय सो होय।

**चन्द्रा०**—(रोकर) हाय ! मरने भी नहीं पाती। यह अन्याय !

**माधवी**—सखी, अन्याय नहीं यही न्याय है।

**का० मं०**—जान दै माधवी वासों मति कछु पूछै। आओ हम तुम मिलकै सल्लाह करैं, कि अब का करनो चाहिए।

**विला०**—हाँ माधवी, तू चतुर है, तू ही उपाय सोच।

**माधवी**—सखी, मेरे जी मे तौ एक बात आवै। हम तीनि हैं सो तीनि काम बाँटि लें। प्यारीजू के मनाइबे को मेरी जिम्मा। यही काम सबमें कठिन है और तुम दोउन मैं सो एक याके घरकेन सों याकी सफाई करावै और एक लालजू सों मिलिबे की कहै।

**का० मं०**—लालजी सों मैं कहूँगी। मैं विन्नै बहुती लजाऊँगी और जैसे होयगो वैसे यासों मिलाऊँगी।

**माधवी**—सखी, वेऊ का करैं। प्रियाजी के डर सों कछू नहीं कर सकैं।

**विला०**—सो प्रियाजी को जिम्मा तेरो हई है।

**माधवी**—हाँ, हाँ, प्रियाजी को जिम्मा मेरो।

**विला०**—तौ याके घर को मेरो।

**माधवी**—भयो, फेर का। सखी काहू बात को सोच मति करै। उठि।

**चन्द्रा०**—सखियों ! व्यर्थ क्यों यत्न करती हौ। मेरे भाग्य ऐसे नहीं हैं कि कोई काम सिद्ध हो।

**माधवी**—सखी, हमारे भाग्य तो सीधे हैं। हम अपने भाग्यबल सों सब काम करैंगी।

**का० मं०**—सखी, तू व्यर्थ क्यों उदास भई जाय है। जब तक साँसा तब तक आसा।

**माधवी**—तौ सखी बस अब यह सलाह पक्की भई। जब ताईं काम सिद्ध न होय तब ताईं काहुवै खबर न परै।

**विला०**—नहीं, खबर कैसे परैगी ?

**का० मं०**—(चन्द्रावली का हाथ पकड़कर) लै सखी, अब उठि। चलि हिंडोरें झूलि।

**माधवी**—हाँ सखी, अब तौ अनमनोपन छोड़ि।

**चन्द्रा०**—सखी, छूटा ही सा है, पर मैं हिंडोरे न झूलूँगी। मेरे तो नेत्र आप ही हिंडोरे झूला करते हैं।

पल-पटुली पै डोर-प्रेम की लगाय चारू
आसा ही के खंभ दोय गाड़ कै धरत हैं।
झुमका ललित काम पूरन उछाह भरयो
लोक बदनामी झूमि झालर झरत हैं॥
'हरीचंद' ऑसू दृग नीर बरसाई प्यारे
पिया-गुन-गान सो मलार उचरत हैं।
मिलन मनोरथ के झोंटन बढ़ाइ सदा
विरह-हिंडोरे नैन झूल्योई करत हैं॥

और सखी, मेरा जी हिंडोरे पर और उदास होगा।

**माधवी**—तौ सखी, तेरी जो प्रसन्नता होय ! हम तौ तेरे सुख की गाहक हैं।

**चन्द्रा०**—हा ! इन बादलों को देखकर तो और भी जी दुखी होता है।

देखि घन स्याम घनस्यामकी सुरति करि
जिय मैं बिरह घटा घहरि-घहरि उठै।
त्यौंहीं इंद्रधनु-बगमाल देखि बनमाल
मोतीलर पी की जय लहरि-लहरि उठै॥
'हरीचंद' मोर-पिक-धुनि सुनि बंसीनाद
बाँकी छबि बार-बार छहरि-छहरि उठै॥

देखि-देखि दामिनो की दुगुन दमक पीत-
पट-छोर मेरे हिय फहरि-फहरि उठै ॥

हाय ! जो बरसात संसार को सुखद है वह मुझे इतनी दुखदायिनी हो रही है।

**माधवी**—तौ न दुखदायिनी होयगी चल उठि घर चलि।

**का० मं०**—हाँ, चलि। (सब जाती हैं)

(जवनिका गिरती है)

**॥ वर्षा-वियोग-विपत्ति नामक तृतीय अंक ॥**

# चौथा अंक

स्थान—चन्द्रावली जी की बैठक

(खिड़की में से यमुनाजी दिखाई पड़ती हैं। पलँग बिछा हुआ, परदे पड़े हुए, इतरदान, पानदान इत्यादि सजे हुए)

(जोगिन[1] आती है)

**जोगिन**—अलख ! अलख ! आदेश आदेश गुरु को ! अरे कोई है इस घर में ? कोई नहीं बोलता। क्या कोई नहीं है ? तो अब मैं क्या करूँ ? बैठूँ। क्या चिन्ता है। फकीरों को कहीं कुछ रोक नहीं। उसमे भी हम प्रेम के जोगी, तो अब कुछ गावैं।

(बैठकर गाती है)

"कोई एक जोगिन रूप कियैं।
भौंहैं बंक छकोंहैं लोयन चलि-चलि कोयन कान छियैं॥
सोभा लखि मोहत नारी नर वारि फेरि जल सबहिं पियैं।
नागर मनमथ अलख जगावत गावत काँधे बीन लियैं[2]"॥
बनी मनमोहिनो जोगिनियाँ।
गल सेली तन गेरुआ सारी केस खुले सिर बैंदी सोहिनियाँ॥
मातै नैन लाल रंग डोरे मद बोरे मोहै सबन छलिनियाँ।
हाथ सरंगी लिए बजावत गाय जगावत बिरह अगिनियाँ[3]॥
जोगिन प्रेम की आई।
बड़े-बड़े नैन छुए कानन लौं चितवन-मद अलसाई॥
पूरी प्रीति रीति रस-सानी प्रेमी-जन मन भाई॥
नेह-नगर मैं अलख जगावत गावत बिरह बधाई॥
जोगिन-आँखन प्रेम-खुमारी।
चंचल लोयन-कोयन खुभि रही काजर रेख दुरारी॥

---

१. गेरूआ सारी, गहना सब जनाना पहिने, रंग साँवला। सदुर का लंबा टीका बेंदा। बाल खुले हुए। हाथ में सरंगी लिए हुए। नेत्र लाल। अत्यन्त सुन्दर। जब-जब गावेगी सरंगी बजाकर गावेगी।

२. काफी।

३. चैती गौरी वा पीलू खेमटा।

डोरे लाल लाल रस बोरे फैली मुख उँजियारी ॥
हाथ सरंगी लिए बजावत प्रेमिन-प्रानपियारी ॥
जोगिन मुख पर लट लटकाई ।
कारी घूँघरवारी प्यारी देखत सब मन भाई ।
छूटे केस गेरुआ बागे सोभा दुगुन बढ़ाई ।
साँचे ढरी प्रेम की मूरति अँखियाँ निरखि सिराई ॥

(नेपथ्य में से पैजनी की झनकार सुनकर)

अरे कोई आता है । तो मैं छिप रहूँ । चुपचाप सुनूँ । देखूँ यह सब क्या बाते करती हैं ।

(जोगिन जाती है, ललिता आती है)

ललिता—हैं ! अब तक चन्द्रावली नही आई । साँझ हो गई, न घर में कोई सखी है न दासी, भला कोई चोर-चकार चला आवै तो क्या हो । (खिड़की की ओर देखकर) अहा ! जमुनाजी की कैसी शोभा हो रही है । जैसा वर्षा का बीतना और शरद का आरंभ होना वैसा ही वृन्दावन के फूलों की सुगंधि से मिले हुए पवन की झकोर से जमुनाजी का लहराना कैसा सुन्दर और सुहावना है कि चित्त को मोहे लेता है । आहा ! जमुनाजी की शोभा तो कुछ कही ही नहीं जाती । इस समय चन्द्रावली होती तो यह शोभा उसे दिखाती, वा वह देख ही के क्या करती, उलटा उसका विरह और बढ़ता । (यमुनाजी की ओर देखकर) निस्संदेह इस समय बड़ी ही शोभा है ।

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए ।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहुँ सुहाए ॥
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज-निज सोभा ।
कै प्रनवत जल जानि परन पावन फल लोभा ॥
मनु आतप बारन तीर कों सिमिटि सबै छाए रहत ।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत ॥
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन ।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन ॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज सोभा ।
कै उमगे पिय-प्रिया-प्रेम के अनगिन गोभा ॥
कै करिकै कर बहु पीय को टेरत निज ढिग सोहई ।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मन मोहई ॥

कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
कै मुख करि भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत ॥
कै व्रज-तियगन-बदन-कमल की झलकत झाईं ।
कै व्रज हरिपद-परस हेत कमला बहु आईं ॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ व्रजमण्डउ बगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥
तिन पै जेहि छिन चंद-जोति राका निसि आवति ।
जल मै मिलिकै नभ अवनी लौ तान तनावति ॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्ज्वल इक ओभा ।
तन मन नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ॥
सा को कबि जो छबि कहि सकै ता छन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अम्बर रहत छबि इकसी नभ तीर की ॥
परत चन्द्र-प्रतिबिम्ब कहूँ जल मधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायो ॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
कै तरग कर मुकुर लिए सोभित छबि छायो ॥
कै रास रमन मै हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है ।
कै जल-उर हरि मूरति बसति ता प्रतिबिम्ब लखात है ॥
कबहुँ होत सत चन्द कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्ब रूप जल मैं बहु साजत ॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुनजल लोटत डोलै ।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ॥
कै बालगुड़ी नभ मैं उड़ी सोहत इत्त-उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ व्रजरमनी जल आवती ॥
मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत मिटि जात जमुन जल ।
कै तारागन ठगन लुकत प्रगटत ससि अविकल ॥
कै कालिन्दी नीर तरग जितो उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
कै बहुत रजत चकई चलत कै फुहार जल उच्छरत ।
कै निसिपति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत कसरत करत ॥
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारण्डव उड़त कहूँ जलकुक्कुट धावत ॥

चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबिध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत॥
कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्ज्वल झलकत रजत सिढ़ी मनु सरस सुहाई॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाए।
रत्नरासि करि चूर कूल मैं मनु बगराए॥
मनु मुक्त माँग सोभित भरो स्यामनीर चिकुरन परसि।
सतगुन छायो कै तीर मै ब्रज निवास लखि हिय हरसि॥

(चन्द्रावली अचानक आती है)

**चन्द्रा०**—वाह वाहरी बैहना आजु तो बड़ी कबिता करी। कबिताई की मोट की मोट खोलि दीनी। मैं सब छिपें छिपें सुनती थी।

(दबे पाँव से जोगिन आकर एक कोने मे खड़ी हो जाती है)

**ललिता**—भलो-भलो बीर, तोहि कबिता सुनिबे की सुधि तो आई, हमारे इतनोई बहुत है।

**चन्द्रा०**—(सुनते ही स्मरणपूर्वक लम्बी साँस लेकर)

सखी री क्यौं सुधि मोहि दिवाई।
हौं अपने गृह-कारज भूली भूलि रही बिलमाई॥
फेर वहै मन भयो जात अब मरिहौं जिय अकुलाई।
हौ तबही लौं जगत-काज की जब लौं रहौं भुलाई॥

**ललिता**—जल जान दे, दूसरी बात कर।

**जोगिन**—(आप ही आप) निस्संदेह इसका प्रेम पक्का है, देखो मेरी सुधि आते ही इसके कपोलों पर कैसी एक साथ जरदी दौड़ गयी। नेत्रों में आँसुओं का प्रवाह उमग आया। मुँह सूखकर छोटा-सा हो गया। हाय! एक ही पल में यह तो कुछ की कुछ हो गयी। अरे इसकी तो यही गति है—

छरी-सी छकी-सी जड़ भई-सी जकी-सी घर
हारी-सी बिकी-सी सो तो सबही धरी रहै।
बोले तें न बोलै दृग खोलै नाहि डोलै बैठी
एकटक देखै सो खिलौना-सी धरी रहै।

'हरीचंद' औरो घबरात समुझाएँ हाय
हिचकि-हिचकि रोवै जीवति मरी रहै ॥
याद आएँ सखिन रोवावै दुख कहि-कहि
तौ लौं सुख पावै जौ लौं मुरछि परी रहै ॥

अब तो मुझसे रहा नहीं जाता। इससे मिलने को अब तो सभी अंग व्याकुल हो रहे हैं।

**चन्द्रा०**—(ललिता की बात सुनी-अनसुनी करके बाएँ अंग का फरकना देखकर आप ही आप) अरे यह असमय में अच्छा सगुन क्यों होता है। (कुछ ठहरकर) हाय आशा भी क्या ही बुरी वस्तु है और प्रेम भी मनुष्य को कैसा अंधा कर देता है। भला वह कहाँ और मैं कहाँ—पर जी इसी भरोसे पर फूला जाता है कि अच्छा सगुन हुआ है तो जरूर आवेंगे। (हँसकर) हँ—उनको हमारी इस बखत फिकिर होगी। "मान न मान मैं तेरा मेहमान", मन को अपने ही मतलब की सूझती है। "मेरो पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागिन नाम"। (लम्बी साँस लेकर) हा! देखो प्रेम की गति! यह कभी आशा नहीं छोड़ती। जिसको आप चाहो वह चाहे झूठ-मूठ भी बात न पूछे पर अपने जी को यह भरोसा रहता है कि वे भी जरूर ही इतना चाहते होंगे। (कलेजे पर हाथ रखकर) रहो-रहो क्यों उमगे आते हो, धीरज धरो, वे कुछ दीवार में से थोड़े ही निकल आवेंगे।

**जोगिन**—(आप ही आप) होगा प्यारी, ऐसा ही होगा। प्यारी मैं तो यहीं हूँ। यह मेरा ही कलेजा है कि अंतर्यामी कहलाकर भी अपने लोगों से मिलने में इतनी देर लगती है। (प्रगट सामने बढ़कर) अलख! अलख!

(दोनों आदर करके बैठती हैं)

**ललिता**—हमारे बड़े भाग जो आपुसी महात्मा के दरसन भए।

**चन्द्रा०**—(आप ही आप) न जानें क्यों इस जोगिन की ओर मेरा मन आपसे आप खिंचा जाता है।

**जोगिन**—भलो हम अतीतन को दरसन कहा, यों ही नित्य ही घर-घर डोलत फिरैं।

**ललिता**—कहाँ तुम्हारो देस है?

**जोगिन**—प्रेम नगर पिय गाँव।

**ललिता**—कहा गुरू कहि बोलहीं?

**जोगिन**—प्रेमी मेरो नाँव॥

**ललिता**—जोग लियो केहि कारनै?

**जोगिन**—अपने पिय के काज ।
**ललिता**—मंत्र कौन ?
**जोगिन**—पियनाम इक ,
**ललिता**—कहा तज्यो ?
**जोगिन**—जग-लाज ॥
**ललिता**—आसन कित ?
**जोगिन**—जितही रमे,
**ललिता**—पंथ कौन ?
**जोगिन**—अनुराग ।
**ललिता**—साधन कौन ?
**जोगिन**—पिया-मिलन,
**ललिता**—गादी कौन ?
**जोगिन**—सुहाग ॥

नैन कहें गुरु मन दियो बिरह सिद्धि उपदेस ।
तब सों सब कुछ छोड़ि हम फिरत देस-परदेस ॥

**चन्द्रा०**—(आप ही आप) हाय ! यह भी कोई बड़ी भारी वियोगिन है तभी इसकी ओर मेरा मन आपसे आप खिचा जाता है ।

**ललिता**—तौ संसार को जोग तो और ही रकम को है और आप को तो पंथ ही दूसरो है । तो भला हम यह पूछैं कि का ससार के और जोगी लोग वृथा जोग साधे हैं ?

**जोगिन**—यामैं का सन्देह है, सुनो । (सारंगी छेड़कर गाती है)

पचि मरत वृथा सब लोग जोग सिर धारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥
बिरहागिन धूनी चारों ओर लगाई ।
बसी धुनि की मुद्रा कानो पहिराई ॥
अँसुअन की सेली गल में लगत सुहाई ।
तन धूर जमी सोइ अंग भभूत रमाई ॥
लट उरझि रही सोइ लटकाई लट कारी ।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी ॥
गुरु बिरह दियो उपदेस सुनो ब्रजबाला ।
पिय बिछुरन दुख बिछाओ तुम मृगछाला ॥

मन के मनके की जपो पिया की माला।
बिरहिन की तो हैं सभी निराली चाला॥
पीतम से लगि लौ अचल समाधि न टारी।
साँची जोगिन पिय बिना वियोगिन नारी॥
यह है सुहाग का अचल हमारे बाना।
असगुन की मूरति खाक न कभी चढ़ाना॥
सिर सेंदुर देकर चोटी गूँथ बनाना।
कर चूरी मुख में रंग तमोल जमाना॥
पीना प्याला भर रखना वही खुमारी।
साँची जोगिन पिय बिना बियोगिन नारी॥
है पथ हमारा नैनो के मत जाना।
कुल लोक वेद सब औ परलोक मिटाना॥
शिवजी से जोगी को भी जोग सिखाना।
'हरिचंद' एक प्यारे से नेह बढ़ाना॥
ऐसे बियोग पर लाख जोग बलिहारी।
साँची जोगिन पिय बिना वियोगिन नारी॥

**चन्द्रा०**—(आप ही आप) हाय-हाय! इसका गाना कैसा जी को बेधे डालता है। इसके शब्द का जी पर एक ऐसा विचित्र अधिकार होता है कि वर्णन के बाहर है। या मेरा जी ही चोटल हो रहा है। हाय-हाय! ठीक प्रान-प्यारे की-सी इसकी आवाज है। (बलपूर्वक आँसुओं को रोककर और जी बहला कर) कुछ इससे और गवाऊँ। (प्रगट) जोगिन जी कष्ट न हो तो कुछ और गाओ। (कहकर कभी चाव से उसकी ओर देखती है और कभी नीचा सिर करके कुछ सोचने लगती है)

**जोगिन**—(मुस्कराकर) अच्छा प्यारी सुनो। (गाती है)

जोगिन-रूपसुधा की प्यासी।

बिन पिय मिलें फिरत बन ही बन छाई मुखहि उदासी॥
भोग छोड़ि धन-धाम काम तजि भई प्रेम-बनबासी।
पिय-हित अलख अलख रट लागी पीतम-रूप उपासी॥
मनमोहन प्यारे तेरे लिए जोगिन बन बन-बन छान फिरी।
कोमल से तन पर खाक मली ले जोग स्वाँग सामान फिरी॥

तेरे दरसन कारन डगर-डगर करती तेरा गुन-गान फिरी।
अब तो सूरत दिखला प्यारे 'हरिचंद' बहुत हैरान फिरी॥

चन्द्रा०—(आप ही आप) हाय यह तो सभी बातें पते की कहती है। मेरा कलेजा तो एक साथ ऊपर को खिंचा जाता है। हाय! 'अब तो सूरत दिखला प्यारे।'

जोगिन—तो अब तुमको भी गाना होगा। यहाँ तो फकीर हैं। हम तुम्हारे सामने गावें तुम हमारे सामने न गाओगी। (आप ही आप) भला इसी बहाने प्यारी की अमृत बानी तो सुनेंगे। (प्रगट) हाँ! देखो हमारी यह पहिली भिक्षा खाली न जाय, हम तो फकीर हैं हमसे कौन लाज है?

चन्द्रा०—भला मैं गाना क्या जानूँ। और फिर मेरा जी भी आज अच्छा नहीं है, गला बैठा हुआ है। (कुछ ठहरकर नीची आँख करके) और फिर मुझे सकोच लगता है।

जोगिन—(मुसक्याकर) वाह रे संकोचवाली! भला मुझसे कौन संकोच है? मैं फिर रूठ जाऊँगी जो मेरा कहना न करेगी।

चन्द्रा०—(आप ही आप) हाय-हाय! इसकी कैसी मीठी बोलन है जो एक साथ जी को छीने लेती है। जरा से झूठे क्रोध से जो इसने भौंहें तनेनी की हैं वह कैसी भली मालूम पड़ती है। हाय! प्राननाथ कहीं तुम्हीं तो जोगिन नहीं बन आए हो। (प्रगट) नहीं-नहीं, रूठो मत, मैं क्यों न गाऊँगी। जो भला-बुरा आता है सुना दूँगी, पर फिर भी कहती हूँ आप मेरे गाने से प्रसन्न न होंगी। ऐ मैं हाथ जोड़ती हूँ मुझे न गवाओ। (हाथ जोड़ती है)

ललिता—वाह, तुझे नए पाहुने की बात अवश्य माननी होगी। ले मैं तेरे हाथ जोड़े हूँ, क्यों न गावगी। यह तो उससे बहाली बता जो न जानती हो।

चन्द्रा०—तो तू ही क्यों नहीं गाती। दूसरों पर हुकुम चलाने को तो बड़ी मुस्तैद होती है।

जोगिन—हाँ हाँ, सखी तू ही न पहिले गा। ले मैं सरंगी से सुर की आस देती जाती हूँ।

ललिता—यह देखो। जो बोले सो घी को जाय। मुझे क्या, मैं अभी गाती हूँ।

(राग बिहाग—गाती है)

अलख गति जुगल पिया-प्यारी की।
को लखि सकै लखत नहिं आवै तेरी गिरधारी की॥

बलि बलि बिछुरनि मिलनि हँसनि रूटनि नित ही यारी की।
त्रिभुवन की सब रति गति मति छबि या पर बलिहारी की॥

**चन्द्रा०**—(आप ही आप) हाय! यहाँ आज न-जाने क्या हो रहा है, मै कुछ सपना तो नही देखती। मुझे तो आज कुछ सामान ही दूसरे दिखाई पड़ते है। मेरे तो कुछ समझ ही नही पड़ता कि मै क्या देख सुन रही हूँ। क्या मैने कुछ नशा तो नही पिया है! अरे यह जोगिन कही जादूगर तो नही है। (घबड़ानी सी होकर इधर उधर देखती है)

(इसकी दशा देखकर ललिता सकपकाती और जोगिन हँसती है)

**ललिता**—क्यों, आप हँसती क्यो है?

**जोगिन**—नही, योंही मै इसको गीत सुनाया चाहती हूँ पर जो यह फिर गाने का करार करे।

**चन्द्रा०**—(घबड़ाकर) हाँ, मै अवश्य गाऊँगी, आप गाइए।

(फिर ध्यानावस्थित सी हो जाती है)

(जोगिन सारंगी बजाकर गाती है)

(सकरा)

तू केहि चितवति चकित मृगी सी?
केहि ढूँढ़त तेरो कहा खोयो क्यों अकुलाति लखाति टगी सी॥
तन सुधि करु उघरत री आँचर कौन ख्याल तू रहति खगी सी।
उतरु न देत जकी सी बैठी मद पीयो कै रैन जगी सी॥
चौंकि चौंकि चितवति चारहु दिस सपने पिय देखति उमगी सी।
भूलि बैखरी मृगछौनी ज्यौं निज दल तजि कहुँ दूर भगी सी॥
करति न लाज हाट घर बर की कुलमरजादा जाति जगी सी।
'हरीचंद' ऐसिहि उरझी तौ क्यौं नहि डोलत संग लगी सी॥
तू केहि चितवति चकित मृगीसी?

**चन्द्रा०**—(उन्माद से) डोलूँगी-डोलूँगी संग लगी (स्मरण करके लजाकर आप ही आप) हाय-हाय! मुझे क्या हो गया है। मैने सब लज्जा ऐसी धो बहाई कि आए गए भीतर बाहर वाले सबके सामने कुछ बक उठती हूँ। भला यह एक दिन के लिए आई बिचारी जोगिन क्या कहेगी! तो भी धीरज ने इस समय बड़ी लाज रखी नहीं तो मैं राम-राम, नहीं-नही, मैंने धीरे से कहा था किसी ने सुना न होगा। अहा! संगीत और साहित्य में भी कैसा गुन होता है कि मनुष्य तन्मय हो जाता है। उस पर जले पर नोन। हाय नाथ! हम अपने उन अनुभव सिद्ध अनुरागों

और बढ़े हुए मनोरथों को किस को सुनावें जो काव्य के एक-एक तुक और संगीत की एक-एक तान से लाख-लाखगुन बढ़ते हैं और तुम्हारे मधुर रूप और चरित्र के ध्यान से अपने आप ऐसे उज्ज्वल सरस और प्रेममय हो जाते है, मानो सब प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे है। पर हा ! अन्त मे करुण रस में उनकी समाप्ति होती है क्योंकि शरीर की सुधि आते ही एक साथ बेबसी का समुद्र उमड़ पड़ता है।

**जोगिन**—वाह अब यह क्या सोच रही हो ! गाओ ले, अब नही मानैंगी।

**ललिता**—हॉ सखी, अब अपना वचन सच कर।

**चन्द्रा०**—(अर्द्धोन्माद की भाँति) हॉ हॉ, मैं गाती हूँ।

(कभी ऑसू भरकर, कभी कई बेर, कभी ठहरकर, कभी भाव बताकर; कभी बेसुर-ताल ही, कभी ठीक-ठीक, कभी टूटी आवाज से पागल की भाँति गाती है)

मन की कासों पीर सुनाऊँ।
बकनो वृथा और पत खोनी सबै चवाई गाऊँ।
कठिन दरद कोऊ नहिं हरिहै धरिहै उलटो नाऊँ।
यह तो जो जानै सोइ जानै क्यों करि प्रगट जनाऊँ॥
रोम-रोम प्रति नैन श्रवन मन केहि धुनि रूप लखाऊँ।
बिना सुजान-शिरोमनि री केहि हियरो काढ़ि दिखाऊँ॥
मरमिन सखिन बियोग-दुखिन क्यों कहि निज दसा रोआऊँ।
'हरीचंद' पिय मिले तो पग परि गहि पदुका समझाऊँ॥

(गाते-गाते बेसुध होकर गिरा चाहती है कि एक बिजली सी चमकती है और जोगिन श्रीकृष्ण बनकर उठाकर गले लगाती है और नेपथ्य में बाजे बजते हैं)

**ललिता**—(बड़े आनंद से) सखी बधाई है, लाखन बधाई है। ले होस में आ जा।
देख तो कौन तुझे गोद लिए हैं !

**चन्द्रा०**—(उन्माद की भाँति भगवान् के गले में लपटकर)

पिय तोहि राखौंगी भुजन मैं बाँधि।
जान न दैहौं तोहि पियारे धरौंगी हिए सों नाँधि॥
बाहर गर लगाइ राखौंगी अंतर करौंगी समाधि।
'हरीचंद' छूटन नहिं पैहौ लाल चतुराई साधि॥
पिय तोहि कैसे हिये राखौं छिपाय !
सुन्दर रूप लखत सब कोऊ यहै कसक जिय आय॥

नैनन में पुतरी करि राखौं पलकन ओट दुराय।
हियरे में मनहूँ के अंतर कैसे लेउँ लुकाय॥
मेरो भाग रूप पिय तुमरो छीनत सौतैं हाय।
'हरीचंद' जीवनधन मेरे छिपत न क्यौं इत धाय॥
पिय तुम और कहूँ जिन जाहू।
लेन देहु किन मो रंकिन कों रूप-सुधा-रस-लाहु॥
जो-जो कहौ करौं सोइ सोई धरि जिय अमित उछाहु।
राखौं हिये लगाइ पियारे किन मन माहिं समाहु॥
अनुदिन सुन्दर बदन-सुधानिधि नैन चकोर दिखाहु।
'हरीचंद' पलकन की ओटै छिनहु न नाथ दुराहु॥
पिय तोहि कैसे बस करि राखौं।
तुव दृग मैं दृग तुव हिय मैं निज हियरो केहि बिधि नाखौं॥
कहा करौं का जतन बिचारौं बिनती केहि बिधि भाखौं।
'हरीचंद' प्यासी जनमन की अधरसुधा किमि चाखौं॥

**भगवान्**—तौ प्यारी मैं तोहि छोड़िकै कहाँ जाउँगो, तू तौ मेरी स्वरूप ही है। यह सब प्रेम की शिक्षा करिबे कों तेरी लीला है।

**ललिता**—अहा! इस समय जो मुझे आनंद हुआ है उसका अनुभव और कौन कर सकता है। जो आनंद चन्द्रावली को हुआ है वही अनुभव मुझे भी होता है। सच है, जुगल के अनुग्रह बिना इस अकथ आनंद का अनुभव और किसको है?

**चन्द्रा०**—पर नाथ, ऐसे निठुर क्यों हौ! अपनों को तुम कैसे दुखी देख सकते हो! हा! लाखों बातें सोची थीं कि जब कभी पाऊँगी तो यह कहूँगी, यह पूछूँगी, पर आज सामने कुछ नहीं पूछा जाता!

**भग०**—प्यारी! मैं निठुर नहीं हूँ। मैं तो अपने प्रेमिन को बिना मोल को दास हूँ। परतु मोहि निहचै है कै हमारे प्रेमिन को हम सों हूँ हमारो बिरह प्यारो है। ताही सों मैं हूँ बचाय जाऊँ हूँ। या निठुरता मैं जे प्रेमी हैं विन को तो प्रेम और बढ़ै और जे कच्चे हैं विनकी बात खुल जाय। सो प्यारी यह बात हू दूसरेन कीं है। तुमारो का, तुम और हम तो एक ही हैं। न तुम हम सों जुदी हो न प्यारीजू सों। हमने तो पहिले ही कही कि यह सब लीला है। (हाथ जोड़कर) प्यारी, छिमा करियो, हम तौ तुम्हारे जनम-जनम के रिनियाँ हैं। तुमसे हम कभू उरिन होइवेई के नहीं। (आँखों में आँसू भर आते हैं)।

**चन्द्रा०**—(घबड़ाकर दोनों हाथ छुड़ाकर आँसू भर के) बस बस नाथ, बहुत भई, इतनी न सही जायगी। आपकी आँखों में आँसू देखकर मुझसे धीरज न धरा जायगा। (गले लगा लेती है)।

(विशाखा आती है)

**विशाखा**—सखी! बधाई है। स्वामिनी ने आज्ञा दई है के प्यारे सों कही दै चन्द्रावली की कुंज में सुखेन पधारौ।

**चन्द्रा०**—(बड़े आनन्द से घबड़ाकर ललिता-विशाखा से) सखियो, मैं तो तुम्हारे दिए पीतम पाये हैं। (हाथ जोड़कर) तुमारो गुन जनम-जनम गाऊँगी।

**विशाखा**—सखी, पीतम तेरो तू पीतम की, हम तो तेरी टहलनी है। यह सब तौ तुम सबन की लीला है। यामें कौन बोलै और बोलै हू कहा जो कछू समझै तौ बोलै—या प्रेम की तो अकथ कहानी है। तेरे प्रेम को परिलेख तो प्रेम की टकसार होयगो और उत्तम प्रेमिन को छोड़ि और काहू की समझ ही में न आवैगो। तू धन्य, तेरो प्रेम धन्य, या प्रेम के समझिवेवारे धन्य और तेरे प्रेम को चरित्र जो पढ़ै सो धन्य। तो मैं और स्वामिनी में भेद नहीं है, ताहू में तू रस की पोषक ठैरी। बस, अब हमारी दोउन की यही बिनती है कै तुम दोउ गलबाही दैकै विराजो और हम युगल जोड़ी को दर्शन करि आज नेत्र सफल करैं।

(गलबाहीं देकर जुगल स्वरूप बैठते हैं)

**दोनों**—नीके निरखि निहारि नैन भरि नैनन को फल आजु लहौ री।
जुगुल रूप छबि अमित माधुरी रूप-सुधा-रस-सिन्धु बहोरी॥
इनहीं सौं अभिलाख लाख करि इक इनहीं कों नितहि चहोरी।
जो नर-तनहि सफल करि चाहो इनही के पद-कंज गहौ री॥
करम-ज्ञान-संसार-जाल तजि बरु बदनामी कोटि सहौ री।
इनहीं के रस-मत्त मगन नित इनहीं के ह्वै जगत रहौ री॥
इनके बल जग-जाल कोटि अघ तृन सम प्रेम प्रभाव दहौ री।
इनहीं को सरबस करि जानौ यहै मनोरथ जिय उमहौ री॥
राधा-चन्द्रावली-कृष्ण-ब्रज-जमुना-गिरिवर मुखहिं कहौ री।
जनम जनम यह कठिन प्रेमव्रत 'हरीचंद' इकरस निबहौ री॥

**भग०**—प्यारी! और जो इच्छा होय सो कहो। काहे सों कै जो तुम्हैं प्यारो है सोई हमैं हूँ प्यारो है।

**चन्द्रा०**—नाथ! और कोई इच्छा नहीं, हमारी तो सब इच्छा की अवधि आपके दर्शन ही ताईं है तथापि भरत को यह वाक्य सफल होय—

परमारथ स्वारथ दोउ कहँ सँग मेलि न सानैं ।
जे आचारज हौइँ धरम निज तेह पहिचानै ॥
वृन्दाबिपिन बिहार सदा सुख सों थिर होई ।
जन बल्लभी कहाइ भक्ति बिनु होई न कोई ॥
जगजाल छाँड़ि अधिकार लहि कृष्णचरित सबही कहै ।
यह रतन-दीप हरि-प्रेम को सदा प्रकाशित जग रहै ॥

(फूल की वृष्टि होती है, बाजे बजते है, और जवनिका गिरती है)

॥ इति परमफलचतुर्थ अंक ॥

---

# टिप्पणी

## पहिला अंक

**चन्द्रावली**—नाटिका की नायिका जिसके नाम पर ग्रन्थ का नामकरण हुआ है।

**रंगशाला**—नाटक खेलने का स्थान।

**भरित नेह···मन मोर**—यह मंगलाचरण या नांदी है और प्रस्तुत नाटिका के उपयुक्त हैं। दे० भूमिका। मंगलाचरण तीन प्रकार का माना जाता है—(१) वस्तुनिर्देशात्मक, (२) नमस्कारात्मक और (३) आशीर्वादात्मक। जहाँ 'जय' या 'जयति' शब्द का प्रयोग होता है आशीर्वादात्मक मंगलाचरण समझना चाहिए। कहा भी है—'ब्राह्मण आशीर्वाद पाठ करता हुआ आया'। यह दोहा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को बहुत प्रिय था। 'श्रीचन्द्रावली' के अतिरिक्त वह 'कर्पूर मंजरी' (१८७५), 'मुद्राराक्षस' (१८७८), और 'प्रेम जोगिनी' (१८७५) नामक नाट्य-कृतियों मे, और 'गीतगोविन्द' (१८७८), 'होली' (१८७९) और 'प्रेम-फुलवारी' (१८८३) नामक काव्य-ग्रन्थों में नांदी या मंगल पाट के रूप में मिलता है।

**नेह नव नीर**—प्रेम रूपी नया जल अर्थात् जो प्रेम नित नवीन बना रहता है।

**सुरस**—अच्छा रस।

**अथोर**—अ-थोर, थोड़े का उलटा, अर्थात् बहुत या अधिक।

**अलौकिक**—अ-लौकिक, लोकोत्तर, दिव्य।

**घन**—बादल, घनश्याम कृष्ण। प्रेम की दृष्टि से यहाँ श्रीकृष्ण अर्थ होगा।

**मन मोर**—मेरा मन, मन रूपी मोर।

**नेति-नेति**—जिसका अन्त न हो अर्थात् जिसका आदि-अंत ज्ञात नहीं है।

**तत्-शब्द-प्रतिपाद्य**—तत्—ब्रह्म, परमात्मा; प्रतिपाद्य—जिसके लिए प्रमाण की आवश्यकता हो। जिसके लिए तत् शब्द का प्रमाण देने की आवश्यकता हो।

**सर्व**—(सर्व्व) पूर्ण।

**चन्द्रावली-चकोर**—चन्द्रावली रूपी चकोर, अर्थात् जिनके लिए चन्द्रावली चकोर है।

**सूत्रधार**—दे० भूमिका (संक्षिप्त नाट्य-शास्त्र) :

**मारिष**—दे० भूमिका (संक्षिप्त नाट्य-शास्त्र)। नाटकों में महात्माओं का संबोधन शब्द।

**पारिपार्श्वक**—दे० भूमिका (संक्षिप्त नाट्य-शास्त्र)।

**आरंभशूर**—जो केवल शुरू करना जानता हो और दृढ़तापूर्वक कार्य पूर्ण करनेवाला न हो।

**रोम**—रोयाँ, छिद्र।

**कर्ण**—कान।

**महाराज पृथु**—सृष्टि के प्रारंभ में राजा वेणु का पुत्र जो पृथ्वी-मंडल का राजा, धर्मात्मा और दिव्य तप और तेजवाला था। उसीके समय में पृथ्वी पर नगर, ग्राम आदि बसे। पृथु की कन्या होने से धरिणी पृथ्वी कहलाई। 'पृथु' शब्द का प्रयोग यहाँ धार्मिक वृत्ति और विस्तार दोनों के अर्थ में हुआ है। जितना अधिक शारीरिक विस्तार होगा उतने ही रोम रूपी कर्ण अधिक होंगे और उतना ही अधिक पारिपार्श्वक सुन सकेगा।

**जग-जन-रंजन**—संसार के मनुष्यों को प्रसन्न करनेवाला।

**आशु-कवि**—शीघ्र ही कविता कर लेनेवाला कवि।

**करि गुलाब···नाँव**—गुलाबजल से मुख धोकर जिसका नाम लेना चाहिए, अर्थात् उनका नाम पवित्र समझकर लेना चाहिए।

**अविचल**—अचल, अटल, जो विचलित न हो।

**नेपथ्य**—दे० भूमिका (संक्षिप्त नाट्य-शास्त्र)।

**त्यागिन कों अत्याग**—त्यागियों के लिए न त्यागने योग्य, अर्थात् जिसे त्यागी भी नहीं छोड़ते।

**नष्ट-जीव**—जिसकी जीवात्मा नष्ट हो गई हो, पातकी।

**रंगरंजक**—(रंगरंज)—रँगनेवाला।

**सलोना**—लावण्य से भरा हुआ।

**टोना**—जादू।

**मुख चंद झलमले**—मुख चंद—मुख रूपी चन्द्रमा, अर्थात् जिसका मुख चन्द्रमा के समान ज्योतित है।

**स्वाँग**—भेस, नकल।

## विष्कम्भक

**शुकदेव**—महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास के पुत्र थे। वे प्रसिद्ध ब्रह्मतत्त्व-ज्ञानी थे और जीवन भर तपस्या करते रहे। उन्होंने ही राजा परीक्षित को भागवत सुनाया था।

**विष्कम्भक**—दे० भूमिका (संक्षिप्त नाट्य-शास्त्र)।

**अहा ! संसार के जीवों...लोगों का यश क्यों गाता**—शुकदेवजी के कहने का भाव यह है कि जीव अविद्या में लिप्त होकर या तो मर्यादा मार्ग का अनुसरण करते हैं, या अपने ज्ञान का अभिमान करते हैं, या विविध मतों के स्थापित करने मे आपस मे झगड़ते हैं, या लौकिक आसक्ति में पड़े रहते हैं, या फिर संसार से विरक्ति धारण कर परलोक-साधन करते हैं, किन्तु पुष्टिमार्गीय भक्ति के लिए यह सब व्यर्थ है। उसे जप, तप वैराग्य, नियम आदि छोड़कर, प्रेम भाव धारण कर केवल श्रीकृष्ण की शरण मे जाना चाहिए जिससे लोक, देश, काल, तीर्थ आदि के दोष से वह मुक्त हो जाता है। प्रभु में जब आसक्ति होती है तो वह मतमतान्तरों के झगड़ों से मुक्त हो जाता है, क्योंकि स्वयं श्रीकृष्ण सब शास्त्रों के सार हैं। श्रीकृष्ण शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन से प्रसन्न नही होते, वे भक्त के बुद्धिशील होने से भी प्रसन्न नहीं होते। वे तो केवल प्रेम के भूखे हैं परंतु जिसे भगवान् कृपाकर अपना समझते हैं, उसीको परमात्मा की प्राप्ति होती है। गोपियों में श्रीकृष्ण के परमब्रह्मत्व-ज्ञान के साथ-साथ पूर्ण प्रेम का मणि-कांचन योग था।

**नेम**—नियम। 'नेम धर्म' से तात्पर्य विधिविहित मर्यादा मार्ग से है।

**मत-मतान्तर**—विभिन्न धर्म।

**परमार्थ**—मोक्ष-साधन।

**परम प्रेम अमृत-मय एकांत भक्ति**—परम प्रेम (प्रभु-प्रेम) रूपी अमृत से पूर्ण मन की अनन्य भक्ति (रागानुगा भक्ति)। भगवान् में एकांत अनुरक्ति ही आनन्द-प्राप्ति का एकमात्र साधन है।

**आग्रह-स्वरूप ज्ञान-विज्ञानादिक अन्धकार**—ज्ञान-विज्ञानादिक (शास्त्र ज्ञान, ब्रह्म-आत्मा की एकता आदि माया या अविद्या के बोध) से सम्बन्धित हठ रूपी अन्धकार। पुष्टिमार्ग के अनुसार भगवान् श्रीकृष्ण शास्त्रों के अध्ययन-अध्यापन से प्रसन्न नहीं होते।

**निगड़**—बन्धन, बेड़ी। लोक और वेद के बन्धन।

**अधिकारी**—पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण की सेवा का अधिकार ही परम पुरुषार्थ है। किन्तु यह अधिकार वही पाते हैं जिनपर भगवान् का अनुग्रह होता है।

**मदिरा को शिवजी ने पान किया है**—प्रेम-रूपी मदिरा का पान। शिव को विष्णु भक्त के रूप में सदैव चित्रित किया गया है और वे एक परम भक्त माने

जाते हैं। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के अनुसार परब्रह्म कृष्ण के ही अंश हैं और उन्हीं के अधीन हैं।

**व्रज की गोपियाँ**—भगवान् के अनुग्रह से गोपीजन द्वारा ही पुष्टिमार्ग प्रवर्तित हुआ माना जाता है। साकेतिक अर्थ में गोपियाँ वेद की ऋचायें हैं।

**अकथनीय और अकरणीय**—कथन से परे, वर्णनातीत और जिसका अनुकरण न किया जा सके।

**माहात्म्य-ज्ञान**—इस बात का ज्ञान कि श्रीकृष्ण ही परसच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप परमात्मा और सर्वसामर्थ्यवान् है, वे ही सेव्य और आश्रय लेने योग्य हैं। जीव के रक्षक श्रीकृष्ण ही हैं।

**पूर्ण प्रीति**—एकान्त अनुरक्ति। श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग रहते हुए पूर्ण आत्म-समर्पण।

**निवृत्त**—मुक्त, विरक्त।

**नारद**—ब्रह्मा के मानस-पुत्र। सदा तर्पण करते रहने से नारद कहलाए। उनके विषय मे हरिवंश, भागवत, महाभारत आदि मे बहुत कुछ लिखा हुआ है। दुष्टों का नाश कराने में वे सदा दत्तचित्त रहे। नारद-सूत्र या नारद-पंचरात्र उनकी रचना कही जाती है। वे हरिभक्त प्रसिद्ध हैं।

**पिंग**—पीला।

**जोहत**—देखने से

**मृगपति**—सिह।

**सात सुर**—सात स्वर (संगीत)—षड्ज, ऋषभ, गाधार,मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ( सा, रे, ग, म, प, ध, नि )।

**जग**—दो।

**अघ**—पाप।

**लय अरु सुर**—संगीत मे गाना गाने, बजाने, पैर एक साथ उठाने आदि को दिखाने के लिए काल और क्रिया साम्य। द्रुत, मध्य और विलंबित लय।

**सुर**—स्वर।

**आरोहन अवरोहन**—आरोहन—चढ़ाव; अवरोहन—उतार। संगीत मे स्वरों का चढ़ाव और उतार।

**कोमल अरु तीव्र**—कोमल—संगीत में स्वर का एक भेद; तीव्र—संगीत में कुछ ऊँचा और अपने स्थान से बढ़ा हुआ स्वर। एक स्वर शुद्ध भी होता है। राग विशेष के अनुसार स्वर कोमल या तीव्र या शुद्ध होते हैं।

**गुन गन**—गुणों का समूह।

**अगम**—अथाह, बहुत गहरे।

**अघट**—जो घटे न।

**तीर्थ-मय कृष्णचरित**—सब तीर्थों के समान कृष्ण-चरित्र।

**काँवरि**—बँहगी।

**भूगोल खगोल**—पृथ्वी और आकाश।

**कर-अमलक**—हाथ का आँवला, अर्थात् वह चीज या बात जिसका हरएक पहलू साफ-साफ जाहिर हो गया हो।

**तुला**—तराजू।

**श्रीराग**—भारतीय आचार्यों ने छः राग माने हैं, यद्यपि उनके नामों के संबंध मे मतभेद है। सामान्यतः भैरव, कौशिक, हिन्दोल, दीपक, श्री, मेघ, ये छः राग माने जाते हैं। श्रीराग मधुर राग माना जाता है।

**राग-सिंधु**—रागों का समुद्र (संगीत), अथवा अनुराग (प्रेम) का समुद्र।

**तूंबी, तूंबा**—कद्दू को खोखला करके बनाया गया पात्र जो वीणा में लगा रहता है। संस्कृत मे वीणा की तूंबी को दो नाम दिए गए है—ककुभ और प्रसेवक।

**ब्रह्म-जीव**—ब्रह्म और जीव के पारस्परिक संबध के विषय मे विवाद।

**निरगुन-सगुन**—निर्गुण—जो ब्रह्म सत्व, रज और तम तीनों गुणों से परे हो। सगुन-साकार ब्रह्म, सत्व, रज और तम से युक्त। इन दोनों के संबंध में विवाद।

**द्वैताद्वैत**—द्वैत और अद्वैत। द्वैत—वह दार्शनिक सिद्धान्त जिसमें जीव और ईश्वर को दो भिन्न पदार्थ मानकर विचार किया जाता है। मध्वाचार्य (१२५७ में जन्म) द्वैत सप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। उनका कहना है कि जिस प्रकार कारण से कार्य की उत्पत्ति होने पर दोनों पृथक्-पृथक् हैं, उसी प्रकार ईश्वर और जीव। अद्वैत—वह सिद्धान्त जिसमे चैतन्य या ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी वस्तु या तत्त्व की वास्तव सत्ता नहीं मानी जाती और आत्मा-परमात्मा में कोई भेद नही स्वीकार किया जाता। शंकराचार्य (८वीं शताब्दी) ने श्रुतियों के आधार पर अद्वैत का प्रचार किया।

द्वैताद्वैत को द्वैत और अद्वैत अलग-अलग वादों के रूप में लिया जाना चाहिए। वैसे द्वैताद्वैत नामक एक मत के प्रवर्तक निंबार्क स्वामी (१२वीं शताब्दी में) थे जिन्होंने बताया कि ब्रह्म से भिन्न होते हुए भी जीव उसमें अपना अस्तित्व खो देता है।

**नित्य अनित्य**—नित्य—त्रिकालव्यापी, अविनाशी । अनित्य—क्षणभंगुर, नाशवान् । क्रमशः ब्रह्म और जीव से सम्बन्धित ।

**श्री वृंदावन**—भगवान् श्रीकृष्ण का क्रीड़ा-क्षेत्र वृन्दावन ।

**प्रेमानन्दमयी श्री ब्रजबल्लभी लोग**—प्रेमानन्द से पूर्ण श्रीकृष्ण के भक्त । ब्रज में ही भगवान् का स्वरूपतः और कार्यतः प्राकट्य हुआ था ।

**विरहावस्था**—पुष्टिमार्गीय भक्ति मे प्रभु का स्नेह परिपूर्ण प्राप्त होना फल है । वह स्नेह दो प्रकार का है—सयोग और विरह । प्रभु पर स्नेह होने के अनन्तर या सेवा से अलग होने पर विरह का अनुभव होता है । संयोग और वियोग दोनों में भक्त प्रभु का सामीप्य प्राप्त करता है ।

**श्रीगोपीजन**—प्रेमानन्द की अवस्था में भगवान् में तन्मय होनेवाली गोपियाँ । वेणुरव सुनकर उन्होंने यह आनन्द की अवस्था प्राप्त की थी ।

**सरि**—समान ।

**हरिरस**—रस—प्रेमरस । श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम ।

**जन तृन-सम···हरिरस माहीं**—श्रीकृष्ण के प्रेम मे लोक-लाज, कुल-मर्यादा का ध्यान नहीं रहता ।

**छाँहीं**—छाँह ।

**लता पता**—लता और पत्ते, पेड़-पत्ते ।

**जामैं**—जिसमें ।

**सिर**—ऊपर का भाग ( लता और पत्तों की जड़ ) ।

**भींजै**—भीगे ।

**रूप-सुधा**—रूप की सुधा । सुधा—अमृत ।

**श्री महादेवजी की प्रीति...आश्चर्य नहीं**—जो हरिभक्त महादेवजी की प्रीति के पात्र हों, उन्हे हरिरस मे डूबना ही चाहिए । पुराणों में शिवजी और नारद के बीच भक्ति-प्रसंग का प्रायः उल्लेख मिलता है ।

**श्रीमती**—प्रधान महिषी राधा । साहित्यिक लक्षण के अनुसार ज्येष्ठा । कृष्ण के साथ-साथ राधा की महानता सम्प्रदाय गत विशेषता है ।

**लीलार्थ दो हो रही हैं**—कृष्ण ब्रह्म हैं । राधा उनकी शक्ति और उन्हींसे आविर्भूत है । अतएव एक होते हुए भी लीलावश उन्होंने अलग अलग रूप धारण किया है ।

**डगर-डगर**—मार्ग-मार्ग ।

**निनेष**—रोकना ।

**जल में दूध की भाँति**—अभिन्न ।

**वेणु, वंशी**—पुष्टिमार्ग में वंशी का बहुत माहात्मय है। वंशीरव का आध्यात्मिक अर्थ है 'ब्रह्मनाद'।

## पहिला अंक

**जवनिका**—दे० भूमिका।

**गिरिराज**—गोवर्द्धन पर्वत।

**मुख से कहती है, चित्त से नहीं**—बाहर कुछ और, भीतर कुछ और। दुराव।

**उड़ती है**—चित्त में बात छिपाकर भुलावा देती है।

**चली न अपनी चाल से**—अपने आचरण के अनुसार व्यवहार करना, कपटाचरण।

**रोग का वैद्य**—प्रेम-रूपी रोग को दूर करनेवाला। ललिता का कहना है कि 'मैं ही तेरे प्रेम को सफल बनाने मे सहायक हो सकती हूँ'।

**ईंट-पत्थर की नहीं हूँ**—हृदयहीन नहीं हूँ।

**उघरि परत**—रहस्य प्रकट हो जाता है।

**खगे**—धँसना, छिपना।

**दुराव**—छिपाव।

**दुरत**—छिपते।

**प्रेम-पगे**—प्रेम-रस मे पगे हुए।

**उघरे से डोलन**—घूँघट से बाहर प्रकट हो जाते हैं।

**मोहनरंग रँगे**—कृष्ण के रंग मे रँगे हुए।

**पहेली बूझना**—छिपी हुई बात का पता लगाना।

**बाँयाँ चरण निकाल तो मैं भी पूजा करूँ**—स्त्री का वामाँग ही पूज्य होता है। चरण-पूजा, आदर-सत्कार या महत्ता स्वीकार करने का प्रतीक है। यहाँ ललिता चन्द्रावली को छिपाने की कला की श्रेष्ठता पर कटाक्ष करती है।

**मकपकाना**—आश्चर्य-चकित होना, लज्जित होना, स्तब्ध होना।

**रूसी जाती है**—क्रुद्ध हुई जाती है।

**सरिहै**—पूर्ण होगा।

**बेदन**—वेदना।

**बापुरौ**—बेचारा।

**मुँह चिढ़ाना**—किसी की आकृति, हाव-भाव या कथन को बहुत बिगाड़ कर नकल करना।

**निठुर**—निष्ठुर।

**लगौंहीं चितवनि**—लगी हुई दृष्टि किसी पर आसक्त होना।

**थिरत**—स्थिर होती हैं।

**ललचौंही बानि**—लालच से भरा स्वभाव, बात ।

**निगोड़ी**—दुष्टा, अभागी ।

**जुरे**—मिले ।

**मोहन के रस...तनिक दुरे**—श्रीकृष्ण के प्रेम में विचलित रहते हैं और तनिक भी न देख पाने से तड़पते है ।

**निगुरे**—गुण-रहित, अशिक्षित ।

**खीझ्यौ**—क्रुद्ध हुआ, झुँझलाया ।

**बरज्यौ**—रोका ।

**बुते**—बुझे हुए ।

**विष के बुते छुरे**—अर्थात् मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाने वाले ।

**उलझौंहैं**—अटकने वाले, फँसने वाले, क्षुब्ध होनेवाले ।

**गन**—गयन्द हाथी !

**लैन के दैन**—संकटमय स्थिति ।

**वह छबि**—इससे प्रकट है कि चन्द्रावली श्रीकृष्ण का सौन्दर्य देख चुकी है ।

**बतरानि**—बातें करने का ढंग ।

**मुरनि**—मुड़ने का ढंग ।

**कोर**—किनारा, ओर ।

**धीरी**—मन्द ।

**बीरी**—पान ।

**पीत पिछौरी काछे**—**पिछौरी**—ओढ़ने की चादर । **काछे**—पीताम्बर बाँधे हुए, पहने हुए ।

**बिरहागम रैन सँजोवती हैं**—विरह के आगमन से रात को सजाती हैं अर्थात् रात को विरह-पीड़ा से पीड़ित होती हैं ।

**तुझे अपनी आरसी...आज खुला**—आँखों मे बसे हुए श्रीकृष्ण को आरसी या दर्पण के माध्यम द्वारा देखती रहती थी ।

**वियोग ओ सँयोग...लखि न परत है**—वियोग तो है ही, आरसी या दर्पण के माध्यम द्वारा आँखों में बसे प्रियतम को देखना ही संयोग है ।

**परम पुनीत प्रेमपथ**—श्रीकृष्ण के प्रति परम पवित्र प्रेम-मार्ग का अनुसरण ।

**प्रेमियों की मंडली की शोभा है**—प्रेमियों में शिरोमणि हो ।

**मैं जब आरसी में...मुझे न चाहे, हा !**—ये पंक्तियाँ चन्द्रावली के चरित्र पर प्रकाश डालती हैं । यह अपने प्रियतम को किसी प्रकार भी दुःखी नहीं देखना चाहती है । स्वयं ही सब कष्ट सहन करना चाहती है ।

**खीझ रही है**—क्रुद्ध हो रही है, झुँझला रही है।

**हाहा ठीठी**—हँसी-मजाक।

**भोर**—सुबह।

---

## दूसरा अंक

**वाह प्यारे ! वाह !...जिसे तुम आप देते हो**—चन्द्रावली के इस कथन से 'कृष्णानुग्रहरूपा हि पुष्टिः' का समर्थन होता है। पुष्टिमार्ग में भगवान् कृष्ण और उनकी कृपा ही मुख्य हैं। भगवान् की कृपा ही भगवान् से मिलाने का एकमात्र साधन है।

**विलक्षण**—अलौकिक।

**अखंड**—तूर्ण।

**ज्ञान वैराग्यादिकों को तुच्छ करके परम शांति देनेवाला**—शास्त्र-ज्ञान-गृह-त्याग, संसार-त्याग आदि का पुष्टिमार्ग मे उतना महत्व नहीं है, जितना प्रेम का। भगवान् जीव का समर्पण भाव देखते हैं, अनुराग देखते हैं, उसकी किसी प्रकार की शक्ति पर अनुरक्त नहीं होते।

**अभिमान**—ज्ञान, धर्म और लौकिक सत्ता का अभिमान।

**कोई किसी स्त्री...चित्त लगाना**—भौतिक प्रेम का रूप।

**ईश्वर की बड़ी लम्बी-चौड़ी पूजा**—मर्यादा मार्ग।

**अमृत**—प्रेम रूपी अमृत।

**जिसे तुम आप देते हो**—जिस पर आपका अनुग्रह या कृपा होती है।

**रार**—झगड़ा।

**बकि कै**—बकवास कर, कहकर, प्रकट कर।

**परतीतहि छीजिए**—प्रतीति—विश्वास, छीजना—क्षीण होना, घरना।

**मरम की पीर**—परम—मर्म, प्राणियों के शरीर का वह स्थान जहाँ आघात पहुँचने से अधिक वेदना होती है, हृदय। पीर—पीड़ा।

**जरनि**—जलन।

**बे-महरम**—इसका पाठ 'बे-बहरम' की और बे-बरहम मिलता है। 'बे-बरहम' पाठ लेने पर अर्थ लगाया जा सकता है—निर्दयी। बा० ब्रजरत्नदास ने 'बे-महरम' पाठ दिया जो युक्तिसगत प्रतीत होता है। अर्थ है 'भेद न जानने वाला'।

**लोय**—लोग।

**लोकलाज...होय सो होय**—पुष्टिमार्गीय भक्ति के अनुसार ही यह कथन है।

**मुरि**—मुड़ कर।

**छाम**—क्षीण।

**कलाम**—प्रतिज्ञा।

**हुती**—थी।

**सूधी**—सीधी।

**साधै**—इच्छा।

**अनखाना**—क्रुद्ध होना, रिसाना।

**सुभाय**—स्वभाव, प्रकृति। 'अच्छा लगना' अर्थ भी हो सकता है—'भाना' से (इस प्रकार करके अर्थात् दया न लाकर क्या तुम अच्छे लगते हो)।

**सात पैर**—सप्तपदी—विवाह समय की सात फेरी।

**कित कों ढरिगो**—कहाँ चला गया।

**साजत हौ**—सजाते हो अर्थात् प्रदर्शित करते हो।

**अनबोलिबे में नहिं छाजत हौ—अनबोलिबे में**—न बोलने में। **छाजना**—शोभा देना।

**दुरि**—छिप कर।

**बिरुदावली**—यश, अर्थात् अपनी शरण में आए की रक्षा करते हो यह यश।

**हात**—हाथ। **कछू हात नहीं**—कुछ हाथ नहीं लगता, मतलब नहीं निकलता।

**जलपान कै पूछनी जात नहीं**—पानी पी कर जाति नहीं पूछनी चाहिए।

**भारवौ**—कहो।

**औधि**—अवधि।

**देखि लीजौ...रहि जायेंगी**—दरशन की लालसा से आँखों का खुला रह जाना कहा गया है।

**अमृत पीकर फिर छाछ कैसे पियेंगी**—छाछ—मट्ठा। उत्तम वस्तु ग्रहण करने के बाद निकृष्ट वस्तु कौन ग्रहण करेगा अर्थात् तुम्हारे सामने अब कौन अच्छा लगेगा।

**पेखिए का**—पेखिए—देखिए। **का**—क्या।

**संगम**—संयोग, मिलन।

**तुच्छन**—तुच्छ सुखों को।

**हरिचंद जू हीरन···लै परेखिए का**—**परेखना**—जाँचना। हीरों का व्यवहार कर काँच को क्या जाँचे। 'अमृत पीकर फिर छाछ कैसे पियेंगी, वाला भाव है।

**जिन आँखिन में...अब देखिए का**—अर्थात् आपका सौन्दर्य देखने के बाद अब कुछ देखने को शेष नही रह जाता ।

**राजा चन्द्रभानु**—गोपो के राजा चन्द्रभानु ।

**ह्याँई**—यहाँ ही ।

**बन के स्वामी**—बन—कदली वन । कदली वन के स्वामी—श्रीकृष्ण ।

**यासूँ**—इससे ।

**अपुने सों बाहर होय रही है**—अपनी सीमा या मर्यादा से बाहर हो रही है अर्थात् होश हवास दुरुस्त नहीं है ।

**अलख लड़ैती**—**अलख**—जो दिखाई न पड़े, ईश्वर का एक विशेषण । **लड़ैती**—लाड़ली, अर्थात् ईश्वर की लाड़ली—एक प्रकार का लाड़भरा संबोधन ।

**मेरा लुटेरा**—मेरा सर्वस्व अपहरण करनेवाला ।

**रूख**—वृक्ष ।

**कितै**—किधर ।

**कदंब**—कदम, एक प्रसिद्ध वृक्ष ।

**अंब-निब**—आम और नीम ।

**बकुल**—मौलसिरी ।

**तमाल**—एक बहुत ऊँचा सुन्दर सदाबहार वृक्ष ।

**बिरुध**—पौधा ।

**जकी-सी**—स्तंभित सी, चकित सी ।

**एक रूप आज श्यामा भई श्याम है**—श्याम और श्यामा (यहाँ चन्द्रावली) आज एकरूप हो गए हैं—अभिन्नता ।

**बदी थी**—निश्चित हुआ था, या स्वीकार किया था ।

**निबही**—निभी, निर्वाह हुआ ।

**अनत**—अन्यत्र और कहीं ।

**गरजना इधर और बरसना और कहीं**—अर्थात् तड़पाना यहाँ और रस-वर्षा कहीं और करना ।

**चातक**—पपीहा ।

**पानिप**—पानी ।

**प्यारे ! चाहे गरजो चाहे लरजो...तुम्हीं अवलंब हौ; हा !**—इन पंक्तियों से पुष्टिमार्गीय भक्त की एकांत भक्ति की ओर संकेत मिलता है । श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी में वह अनुरक्त नहीं होता । पुष्टिमार्गीय भक्त निश्चिन्त रहता है, वह सन्तोषी होता है और इस बात में विश्वास रखता है कि स्वयं भगवान् ही उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण करेंगे ।

**लरजना**—काँपना, हिलना, दहलना ।
**श्याम घन**—काले बादल, घनश्याम—कृष्ण ।
**पंडिताइन**—ज्ञानी ।
**कुलकानि**—कुल की मर्यादा ।
**पसारन दीजिए**—फैलने दीजिए ।
**चार चवाइन**—गुप्त चुगलखोर, छिपे तौर से बदनामी करनेवाले ।
**बिधना**—विधाता ।
**सिस्टाचार**—शिष्टाचार ।
**अनमेख**—अनिमेष, टकटकी के साथ ।
**पेख**—देखकर ।
**छकिसों छयो**—तृप्ति से पूर्ण हो गया है ।
**उडुगन**—तारागण ।
**मान-कमल**—मान रूपी कमल । चन्द्रमा के निकलते ही कमल मुरझा जाता है ।
**गोरज**—गौ के खुरों से उड़ी हुई धूल ।
**पटल**—आवरण, पर्दा ।
**ठयो**—ठाना ।
**जात ही**—जाते ही ।
**झूठन के सिरताज**—झूठ बोलनेवालों मे शिरोमणि ।
**मिथ्यावाद-जहाज**—मिथ्यावाद के आश्रय अर्थात् झूठ बोलने वालों मे प्रधान, मिथ्यावाद को फैलानेवाले ।
**मति परसौ तन...अहो अनूठे**—यह तथा ऐसे ही अन्य वाक्य चन्द्रावली की रीतिकालीन नायिका के रूप में चित्रित करते है ।
**परसौ**—स्पर्श करो ।
**एक मतो...क्यों बनाइए**—सूर्य से एक मत क्यों कर लिया है, क्योंकि हे प्रियतम ! तुम्हारे रूठने से वह भी रूठ जाता है अर्थात् उदित नही होता और रात्रि की अवधि बढ़ जाने से दुःख भी बढ़ जाता है ।
**गुदगुदाना...न आवै**—उतना ही मजाक अच्छा जिससे किसी को पीड़ा न पहुँचे ।
**कनौड़ी**—मोल ली हुई दासी, आश्रिता, कृतज्ञ ।
**सुख-भौन**—सुख के भवन अर्थात् सुख-पूर्वक ।
**सबै थल गौन**—सब स्थानों में गमन ।

**राधिकारौन**—श्रीकृष्ण ।

**मँवर**—भौंरा ।

**मोहन-व्रत-धारी**—मोह का व्रत धारण करनेवाले अर्थात् प्रीति में अस्थिरता ।

**मानस**—मन, मानसरोवर अर्थात् श्रीकृष्ण ।

**गोभा**—अंकुर ।

**बेदन**—वेदना ।

**हत्यारिन वरषा रितु**—वर्षा ऋतु में विरही जनों की पीड़ा और भी बढ़ जाती है ।

**बिधिना**—विधाता ।

**उमाह**—उत्साह, उमंग ।

**इस ऋतु में...प्यारी कहने वाला कौन मिलेगा**—यह कथन रीति-कालीन विरहिणी नायिका के कथन से साम्य रखता है ।

## अंकावतार

**अंकावतार**—दे० भूमिका ( संक्षिप्त नाट्य-शास्त्र ) ।

**बीथी**—मार्ग, रास्ता ।

**साँड़**—षंड, बैल ।

**तापैं**—उस पर ।

**निपूते**—पुत्रहीन । एक प्रकार की गाली जिसका ब्रज-प्रदेश में अब भी प्रयोग होता है ।

**सुबल**—गोप का नाम ।

**तूमड़ी**—तूंबी, एक प्रकार का बाजा ।

**लहकाय दीनो**—झोंके के साथ दौड़ा दिया ।

**रपट्टा**—झपट्टा, चपेट ।

**कौन गति कराऊँ**—कैसी तबियत ठीक कराऊँ, दुर्दशा कराना, पिटवाना ।

**प्रानन की हाँसी**—ऐसी हँसी जिससे प्राणों पर आ बने ।

**हाट**—बाजार ।

**यारैं**—प्रेमी ।

**खुटका**—चिंता, आशंका ।

**लोक-वेद, अपना-बिराना**—लोक, वेद, अपने और पराए संबंध तोड़ना ही पुष्टि-मार्गीय भक्त का चिन्ह है ।

**धर्म से फल होता है, फल से धर्म नहीं होता**—यदि तुम हमें धर्मोपदेश दो तो तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस प्रकार के धर्म का पालन किया

जाता है, वैसा ही फल होता है। ऐसा नहीं होता कि फल को देखकर धर्म का उपदेश दिया जाय। तुमने हमें जैसा प्रेम-धर्म दिया वैसा ही हमने आचरण किया। अब तुम हमारा आचरण देखकर मर्यादा धर्म का उपदेश दो, यह तो ठीक नहीं है।

**मुँह ढको फिर भी बोलने बिना डूबे जाते हो**—मुँह ढँककर न बोलने का उपक्रम करो फिर भी तुम्हारा बोलने के लिए चित्त व्याकुल रहता है। हम तो बोलना नहीं चाहते तब भी तुम बोले बिना नहीं रहते।

**◡**—चन्द्रावली के नाम का प्रतीक।

**चक्र घहराय**—मुसीबत आए।

**कपोत व्रत**—बिना आह किए अत्याचार सहना।

**उस मुँह से...हाय निकले**—जीभ खींच लेने से मुँह से 'हाय' नहीं निकल सकती। वास्तविक प्रेम वही है जिसमे कभी आह न निकले।

**जाके पाँव...पराई**—जिसे स्वयं काँट सहन नहीं करना पड़ा वह दूसरे के कष्ट को क्या समझे।

**इस प्रीति में संसार की रीति से कुछ भी लाभ नहीं**—विलक्षण अर्थात् अलौकिक मूक प्रेम मे लौकिक प्रेम की रीति काम नही आती अर्थात् वह लौकिक प्रेम से भिन्न होता है।

**बूढ़ी फूस सी डोकरी**—ऐसी बूढ़ी जिसके अंग बिल्कुल शिथिल हो गए हों, जिसका केवल अस्थि पंजर मात्र रह गया हो।

**बात फोड़ि कै उलटी आग लगावै**—भेद खोल कर काम बिगाड़े या चुगली खाय।

---

## तीसरा अंक

**सखी, देख बरसात...पतिव्रत पाल सकती है**—यह तथा इसी प्रकार के कुछ आगे के शृंगारपूर्ण कथन रीतिकालीन नायिकाओं की याद दिलाते हैं। वास्तव में चन्द्रावली के प्रेम-वर्णन और सखियों के वार्तालाप पर रीतिकालीन परम्परा का प्रभाव है।

**कामदेव...भिजवाई है**—वर्षा-काल में शृंगार भावना उद्दीप्त हो जाती है, इसीलिए ऐसा कथन किया गया है।

**निशान**—पताका।

**करखा**—युद्ध के समय उत्साहपूर्ण गान। विजय के लिए आ रही सेना का रूपक होने से 'करखा' का उल्लेख किया गया है।

**निगोड़ा**—नीच, दुष्ट। एक प्रकार की गाली।

**कुल की मरजाद...चढ़ाई है**—वर्षाकालीन शृंगारपूर्ण वातावरण में वंशमर्यादा की रक्षा करना कठिन है।

**कामिनी**—कामवती स्त्री।

**बावली**—चौड़े मुंह का कुआं जिसमें पानी तक पहुंचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हो, छोटा गहरा तालाब।

**सकपके से**—चकित से।

**बीर बहूटी**—गहरे लाल रंग का एक छोटा रेंगनेवाला कीड़ा, इन्द्रवधू।

**पारी-पारी**—बारी-बारी।

**करारा**—नदी का वह ऊँचा किनारा जो जल के काटने से बने।

**पड़े-पड़े पछता रहे हैं**—वर्षा के कारण मार्ग बन्द हो जाने से।

**वियोगियों को...आया है**—वर्षा काल में विरह और भी तीव्र हो जाता है।

**लाज के...प्रलय ही ठहरा**—जब लज्जा ही नहीं रही तो जीवन में फिर शेष ही क्या रहा, सब-कुछ नष्ट हो गया।

**गारद**—गारत, नष्ट, बरबाद।

**बटे कृष्ण**—वटवाले कृष्ण, उनकी मूर्ति या मन्दिर।

**भांडीर वट**—भांडीर—व्रज के एक बन का नाम, वहाँ का वट।

**झंखना**—झींखना, दुखड़ा रोना।

**पुरवैया**—जो पूर्व से चलती है।

**लरजना**—काँपना, हिलना।

**एकतार**—लगातार।

**झमाका**—पानी बरसने का झमझम शब्द।

**ठठोलिन**—हँसी दिल्लगी करने वाली, मसखरी।

**खुमारी**—नशा।

**ऐसी कच्ची नहीं कि थोड़े में बहुत उबल पड़े**—अर्थात् मैं इतनी कमजोर नहीं कि थोड़ी सी उत्तेजना पाते ही अपना संयम खो दूँ।

**बिसात**—हैसियत।

**तूमड़ी तोड़-तोड़ कर**—तूमड़ी—तूँबा जिसे प्रायः साधु अपने पास रखते हैं। वर्षाकालीन वातावरण में योगियों का संयम भी टूट जाता है और वे अपने तूँबे को फेंक-फाक कर भोगी बन जाते हैं।

**किसी सिद्ध से कान फुँकवाकर तुमड़ी तोड़वा ले**—सिद्ध—जिसने योग या तप से सिद्धि-लाभ की हो। यहाँ साधारण साधु से मतलब है। कान

फुँकवाना—कोई सिद्ध या साधु किसी की कामना की पूर्ति के लिए जब कान में मंत्र सुनाकर दीक्षा देता है तो उसे 'कान फूँकना' कहते हैं। साधारणतः किसी स्त्री का किसी साधु से काम-दीक्षा प्राप्त करना 'कान फुँकवाना' कहा जाता है। माधुरी के कहने का तात्पर्य यह है कि तू भी किसी से अपना मनोरथ पूर्ण करा ले।

**पीर**—वेदना, व्यथा।

**कदम**—कदम्ब वृक्ष।

**दईमारों**—दैव के मारे हुए। एक प्रकार की गाली जिसका प्रयोग अब भी ब्रज में होता है।

**इन दईमारों का कूकना...लगाते हैं**—कामिनी का यह कथन रीतिकालीन परंपरा के अतर्गत है। ठाकुर ने कहा है—'धनि वे धनि पावस की रतियाँ पति की छतियाँ लगी सोवती है।' देव का भी कहना है—'चौगुनो रंग चढ़ै चित में चुनरी चुचात लला के नि चोरत'।

**और तेरो...बढ़े हीगा नहीं**—कामिनी के ऊपर वाले कथन—'दोनों परस्पर पानी...बढ़ाते हैं' के बदले मे दिया गया उत्तर।

**चूनरी**—वह रंगीन ओढ़नी जिसके बीच-बीच मे बुँदकियाँ होती हैं।

**सगबगी**—भींगी हुई।

**बलैया लेना**—किसी का दुःख अपने ऊपर लेना, मंगल-कामना करते हुए प्यार करना।

**समा बँधना**—संगीत आदि का इतनी उत्तमता से होना कि लोगों का स्तब्ध हो जाना, संगीत में लय हो जाना।

**गाँती**—गाती, वह वस्त्र जो आगे से गले मे बाँधा जाता है, गले में वस्त्र लपेटने का एक ढंग।

**पेंग मारना**—झूले पर झूलते समय झोटे लेना, अर्थात् एक ओर से दूसरी ओर इस ढंग से जाना कि वेग बढ़ जाय।

**नैनों में पिया की मूर्ति झूल रही है**—नेत्रों में प्रियतम बसे हैं। 'राधिका के हिय झूलत साँवरो के हिय झूलति राधा'।

**हूलित**—पीड़ित होती है।

**विरह-सूल**—विरह-रूपी काँटा।

**घन-घोरे**—बादल की गंभीर गरज।

**मुरनि**—मुड़ने का ढंग।

**कजरारे दृग डोरे पै**—अंजन युक्त आँखों के डोरों पर।

**ऊनरी**—कम, न्यून ।
**दूनरी**—दोहरा हो जाना ।
**रुत**—ऋतु ।
**काहुवै**—किसी को भी ।
**आवती**—आती ।
**तऊ**—तब भी ।
**नायँ**—नही ।
**याही**—इससे ।
**याहू तो**—यह भी तो ।
**छोटी स्वामिनी**—चन्द्रावली के लिए प्रयुक्त । नाटिका के लक्षणों के अनुसार भी वह कनिष्ठा नायिका है ।
**खराबी तो हम लोगन की**—अर्थात् चन्द्रावली की तरफदारी कर बिना श्रीमती जी की आज्ञा के उसके और श्रीकृष्ण के मिलन की चेष्टा करें तो श्रीमतीजी के बिगड़ जाने का भय है, किन्तु साथ ही चन्द्रावली को अकेली भी नही छोड़ सकती और न उसकी व्यथा देख पाती है ।
**ये दोऊ फेर एक की एक होयँगी**—अर्थात् अत में चन्द्रावली का श्रीकृष्ण के साथ मिलन होने से—वह भी श्रीमतीजी की आज्ञा से—चन्द्रावली और श्रीमतीजी एक हो जाएँगी ।
**लाठी मारवे...जुदा हो जायगो**—पानी का अलग होना असंभव है । इससे चन्द्रावली और श्रीमतीजी के अभिन्नत्व पर जोर दिया गया है । विशाखा ने आगे भी कहा है—'तो मैं और स्वामिनी मे भेद नहीं ।'
**ढिमकी**—अमुक ।
**हम्बै बीर—हम्बै**—हाँ । **बीर**—सखी, सहेली ।
**स्वामिनी सों चुगली खाई**—स्वामिनी से तात्पर्य श्रीमतीजी ( राधा ) ज्येष्ठा नायिका से है । चन्द्रावली के सम्बन्ध मे चुगली ।
**रात छोटी है और स्वांग बहुत हैं—स्वाँग**—बनावटी वेष जो दूसरे का रूप बनाने के लिए धारण किया जाय । समय कम काम बहुत । चन्द्रावली के हृदय में उमंगें बहुत हैं, जो जन्म-जन्मान्तर में पूर्ण नहीं हो सकतीं तो इस एक क्षणभंगुर जीवन की तो बात ही क्या है । अर्थात् चन्द्रावली के हृदय की सभी उमंगें इस क्षणभंगुर जीवन में पूर्ण नहीं हो सकतीं ।
**जी**—हृदय ।
**अपने-पराए...बेकाम हो गई**—अर्थात् वह कुल-मर्यादा और लोक-लाज सभी

छोड़ चुकी है। भौतिक दृष्टि से अब उसका कोई नहीं है। उसके अब श्रीकृष्ण ही सहारे हैं।

**सबको छोड़कर...यह गति की**—लोक और परिवार छोड़कर श्रीकृष्ण की शरण में आई, किन्तु उन्होंने भी उसकी तक कोई सुधि नहीं ली। विरह के कारण दीनहीन दशा।

**दीया लेकर मुझको खोजोगे**—चारो ओर हैरान होकर ढूँढ़ोगे।

**स्नेह लगाकर...सुजान कहलाते हो—सुजान**—सज्जन। धोखा देनेवाले को सुजान कहलाने का अधिकार नहीं है।

**बकरा जान से गया, पर खाने वाले को स्वाद न मिला**—किसी के लिए अपने प्राण दे और वह उसका एहसान तक न माने।

**हौस**—हवस, लालसा, कामना।

**प्रकट होकर संसार...शंकाद्वार खुला रखते हो**—अर्थात् 'चार चवाइन' ने जो चारों ओर शोर मचा रखा है, मुझे कलंकित कर रखा है, मेरे चरित्र पर सन्देह कर रखा है, उसे क्यों नहीं मुझसे मिलकर, मुझे ग्रहण कर दूर कर देते।

**अपने कनौड़े को जगत की कनौड़ी मत बनाओ**—अर्थात् मेरे तो केवल तुम्हीं आश्रय हो, संसार के आश्रय मे मुझे मत भेजो। मैं केवल तुम्हारी ही कृपा की भूखी हूँ, सासारिक लोगो की कृपा की नहीं।

**मझधार में डुबाकर ऊपर से उतराई माँगते हो—मझधार**—न तो मैं संसार ही की रही, न तुम्हीं ने मुझे ग्रहण किया। **उतराई**—महसूल, अर्थात् अधिक से अधिक वेदना और पीड़ा।

**जन-कुटुंब से छुड़ाकर...यह कौन बात है**—छितर-बितर—दूर दूर करना, विरल करना। एक ओर तो मैं अपने-पराए से अलग हुई, दूसरी ओर तुम भी ग्रहण नहीं करते। इससे मेरा जीवन व्यर्थ हो गया है।

**सब की आँखों में हलकी हो गई**—निगाहों मे गिर गई, अपमानित हुई।

**'भामिनी तें भौंड़ी करी...कुल तें**—अर्थात् सब प्रकार से तुमने मुझे अपमानित किया, मुझे नीचे गिराया, मेरा नाश किया।

**भामिनी**—स्त्री।

**भौंड़ी**—भद्दी, मिट्टी।

**मानिनी**—मान करनेवाली।

**मौड़ी**—लड़की, अर्थात् सरल स्वभाववाली, मान न कर सकनेवाली।

**कौड़ी करी हीरा तें**—हीरा मूल्यवान् वस्तु है, कौड़ी का कोई मूल्य नहीं। इसलिए अर्थ हुआ मूल्य का गिरना, अपमानित होना।

**कनौड़ी करी कुल तें**—कुल से भी तुच्छ किया, अथवा कलंकित या अपमानित किया।

**गाली दूँगी**—दुर्वचन कहूँगी, कलंक-सूचक आरोप लगाऊँगी। ये गालियाँ ब्याज रूप में है। वास्तव मे चन्द्रावली ने दुर्वचनों के रूप मे श्रीकृष्ण के परम-ब्रह्मत्व का वर्णन किया है।

**मर्म्म वाक्य**—वेदना पहुँचानेवाले वाक्य, रहस्य-वाक्य।

**निर्दय, निर्घृण...अपनी ओर देखो**—इन सब वाक्यों में चन्द्रावली ने ऐसे श्रीकृष्ण का वर्णन किया है जो प्रपचपूर्ण सृष्टि के कर्ता हैं, किन्तु स्वयं दोष-रहित हैं, उससे अलग रहते हैं, जो किसी मोह-ममता में नही पड़ते, जो सर्वगुणसंपन्न साथ ही सब गुण से परे है, जो भक्तवत्सल है, सर्वज्ञ व्याप्त हैं, जिनका जीव एक अंश है, जो स्वय अविद्या से रहित हैं, जिनमे विरुद्ध-अविरुद्ध, सर्वशक्ति और धर्म का समावेश माना गया है आदि, आदि।

**निर्घृण**—निंदित, निर्दय, जिसे गंदी वस्तुओं या बुरे कामों से घृणा या लज्जा न हो।

**निर्दय हृदय कपाट**—कपाट—किवाड़, पट। जिसके हृदय का कपाट किसी के लिए न खुला हो, अर्थात् जो कठोर और दयाहीन हो, जिसका हृदय न पसीजे।

**बखेड़िये**—बखेड़ा अर्थात् व्यर्थ विस्तार या आडम्बर करनेवाला, झगड़ालू। संसार रूपी बखेड़ा।

**क्यों इतनी छाती ठोंक...विश्वास दिया**—अर्थात् शरणागत पालक होने की क्यों घोषणा की। पुष्टिमार्ग में ही नही सर्वत्र भगवान् भक्तों के रक्षक माने गए हैं। गीता में स्वयं भगवान् ने घोषणा की है।

**जहन्नुम में पड़ते**—**जहन्नुम**—नरक। आपसे कोई सम्बन्ध न होता। आपके अपने शरण में न लेने से उनका उद्धार ही न होता।

**तुर्रा**—उस पर भी इतना और, सबके उपरान्त इतना यह भी।

**सब धान बाइस पसेरी**—जहाँ अच्छे-बुरे, ऊँच-नीच का ख्याल न हो। सब को एक ही दृष्टि से देखना।

**उल्लू फँसे हैं**—बेवकूफ बने हैं।

**चाहे आपके...फँसे हैं**—आपके प्रेम में दुःखी हों या सांसारिक विषय-वासना से पीड़ित हों, आप दोनों में से किसी की खबर नहीं लेते। सभी जीव अविद्या आदि दोषों से युक्त हैं।

**उपद्रव और जाल**—सांसारिक उपद्रव और जाल।

**भला क्या काम था...विषमय संसार किया**—परब्रह्म श्रीकृष्ण तो आनन्दमात्र हैं, आनन्दस्वरूप हैं, किन्तु उनका आविर्भाव-तिरोभाव होता रहता है।

**विषमय**—अविद्या आदि दोषों से लिप्त।

**बड़े कारखाने पर बेहयाई परले सिरे की**—**बड़ा कारखाना**—संसार। **बेहयाई परले सिरे की**—हद दरजे की बेहयाई। जितना बड़ा कारखाना उतनी ही हद दरजे की बेहयाई। न तो झूठे कहलाने से डरते हो, और न अपना वचन ही पूर्ण करते हो।

**नाम बिके**—अत्यधिक प्रसिद्ध हों—चाहे झूठे और बेहया ही प्रसिद्ध हों। भगवान् चाहे भक्तों की रक्षा करें या न करें, अपना वचन पूर्ण करें या न करें उनको तो सभी जपते हैं।

**झूठा कहें**—अर्थात् भक्तों को दिए गए वचन का पालन न करें।

**अपने मारे फिरें**—भटकते फिरें। भक्ति का सच्चा मार्ग दिखाई न दे।

**शुद्ध बेहयाई**—जिसमें बेहयाई के सिवाय और कुछ न हो।

**लाज को...दिया है**—लाज को अपमानित करके बिल्कुल निकाल दिया है, अर्थात स्वयं निर्लज्ज, बेहया हो।

**जिस मुहल्ले में···नहीं जाती**—वही निर्लज्जता का भाव है। भगवान् श्रीकृष्ण का मुहल्ला वैकुण्ठ ही हो सकता है।

**मत-वाले मतवाले···सिर फोड़ते**—**मत-वाले**—विभिन्न धर्मावलम्बी। **मतवाले**—पागल। सब धर्मावलम्बी अपने-अपने ढंग से ईश्वर का निरूपण कर आपस में लड़ते हैं। यदि ईश्वर दिखाई पड जायँ तो झगड़ा क्यों हो। अँधे और हाथीवाली कथा चरितार्थ होती है।

**जब ऐसे हो तब ऐसे हो**—अर्थात् जब ऐसे निदनीय हों तब तो हमें मुग्ध कर रखी है। जब निंदनीय न होते तब न जाने क्या करते।

**हुकमी बेहया**—अचूक, न चूकनेवाले बेहया।

**माथा खाली करना**—इतना अधिक कहना या बोलना।

**हम भी तो···झूठी हैं**—चन्द्रावली ने भी लोक-लाज आदि छोड़कर, घरवालों से बचकर, बिना किसी की परवा कर श्रीकृष्ण से प्रीति की है।

**जस दूलह तस बनी बराता**—जैसे को तैसा साथी।

**मूल उपद्रव तुम्हारा है**—तुम्हीं इस सृष्टि के मूल कारण हो, अथवा तुम्हारे ही सौन्दर्य ने हमें मुग्ध कर यह उपद्रव खड़ा किया है।

**इतना और कोई न कहेगा**—जितने वास्तविक गुणों का मैंने बखान किया है उतना कोई और नहीं करेगा।

**सिफारिशी नेति-नेति कहेंगे**—शास्त्रीय या मर्यादा मार्ग से किसी पद पर पहुँचे हुए लोग तुहारा 'अंत नहीं है, अंत नहीं है' कहकर वर्णन करते हैं, सच्चा वास्तविक रूप नहीं बताते।

**दुःखमय पचड़ा**—दुःखमय संसार (पचड़ा, प्रपंच, बखेड़ा)।

**जंगल में मोर नाचा किसने देखा**—चुपचाप किए गए काम को कौन जानता है। मेरी मूक पीड़ा को कौन जानता है।

**वह**—परब्रह्म स्वरूप श्रीकृष्ण।

**मेरे अपराधों...अपनी ओर देखो**—अर्थात् अपराधों या दोषों या पापकर्मों की ओर न देखकर अपने शरणागत वत्सलता वाले यश की ओर देखो। तुमने न मालूम कितने पापी तारे हैं।

**सौंह**—सौगन्ध।

**प्रिया जी**—श्रीमतीजी (राधा), ज्येष्ठा नायिका।

**हा हा खाऊँ**—मिन्नत करूँ।

**तांई**—तक।

**सल्लाह**—सलाह।

**प्यारी जू**—श्रीमतीजी (राधा), ज्येष्ठा नायिका।

**घरके न सों याकी सफाई करावै**—घरवालों से इसकी निर्दोषता सिद्ध करावे, कलंक का दोषारोपण हटवावे।

**लालजी**—श्रीकृष्ण।

**विन्हें**—उन्हें।

**जब तक साँसा तब तक आसा**—अंत समय तक आशा रखनी चाहिए।

**काहुवै**—किसी को भी।

**अनमनोपन**—खिन्नता उदासी।

**मेरे तो नेत्र...करते हैं**—मेरे नेत्रों के हिंडोरे में श्रीकृष्ण झूला करते हैं।

**पल पटुली**—पलक रूपी पटुली।

**चारु**—सुन्दर।

**झुमका**—गोल लटकन।

**झालर**—लटकता हुआ किनारा।

**झूमि**—झूमकर।

**ललित**—सुन्दर।

**काम पूरन**—काम से पूर्ण।

**उछाह**—उत्साह।

**मलार**—मलार राग।

**झोंटन**—पेंग।

**घन स्याम**—काले बादल। **घनस्याम**—श्रीकृष्ण।

**घहरि-घहरि**—गरजने का गम्भीर शब्द करना।

**इन्द्रधनु—बनमाल**—तुलसी, कुद, मदार, परजाता और कमल इन पाँच चीजों से वनमाला बनती है।

**बगमाल—मोतीलर**—सफेद रग होने के कारण दोनों मे साम्य है।

**छहरि-छहरि**—छितरा जाती है, चारों ओर फैल जाती है अर्थात् श्रीकृष्ण की शोभा सामने आ जाती है।

**फहरि-फहरि**—फहरना, वायु मे उड़ना।

---

## चौथा अंक

**जोगिनी**—साधुनी, तपस्विनी।

**अलख-अलख**—अलख—अगोचर, अप्रत्यक्ष, ईश्वर का एक विशेषण। परमात्मा के नाम पर भिक्षा माँगना, अथवा पुकार कर परमात्मा का स्मरण करना या कराना।

**आदेश आदेश गुरु को**—गुरु की आज्ञा। गुरु की दुहाई देना।

**बंक**—टेढ़ी।

**छकोहैं**—छके हुए (अपने प्रेम-रस के उन्माद के कारण)।

**कोपन**—आँख का कोना।

**कान छियैं**—कान छूते है (नेत्रो के बड़े होने का चिह्न है)।

**बारि फेरि जल सबहिं पियैं**—सब निछावर होते हैं।

**नागर मनमथ**—चतुर काम देव।

**सेली**—वह बद्धी या माला जिसे योगी लोग गले मे डालते या सिर मे लपेटते है।

**सोहिनियाँ**—सुहावनी, शोभा देनेवाली।

**मातै**—मदमस्त।

**बिरह-अगिनियाँ**—विरहाग्नि।

**चितवन मद अलसाई**—मत्तता के कारण नेत्र अलसाए हुए है।

**गावत बिरह बधाई**—विरह का गीत गाती है।

**खुमारी**—नशा।

**खुभना**—चुभना, घुसना, धँसना।

**ढरारी**—बहनेवाली ।
**घूंघरवारी**—घुँघराली ।
**बागे**—वस्त्र (वैसे 'जामा' या 'अंग के तरह का पहिनावा') ।
**सिराई**—शीतल हुई ।
**पेंजनी**—झन झन बजनेवाला एक गहना जो पैर में पहना जाता है ।
**तरनि-तनूजा**—**तरनि**—सूर्य । **तनूजा**—पुत्री । सूर्य की पुत्री अर्थात् यमुना ।
**मुकुर**—दर्पण ।
**प्रनवत**—प्रणाम करते हैं ।
**आतप-बारन**—गर्मी दूर करने के लिए ।
**नै रहे**—झुके हुए है ।
**अमल**—स्वच्छ ।
**सैवालन**—सिवार ।
**गोभा**—अंकुर ।
**ढिंग**—पास ।
**उपचार**—विधान, पूजन के अग या विधान जो प्रधानतः सोलह माने जाते है ।
**भृङ्ग**—भौंरा ।
**कमला**—लक्ष्मी ।
**सात्विक अरु अनुराग**—**सात्विक**—शृगार के अतर्गत, सात्विक भाव—स्तंभ, स्वेद, रोमाच, कंप, अश्रु आदि जो निसर्ग जात अग विकार है । **अनुराग**—प्रीति, प्रेम ।
**बगरे फिरत**—फैले हुए है ।
**सतधा**—सौ ओर प्रधावित हो कर, सौ तरह से ।
**राका**—पूर्णिमा की रात्रि ।
**तान तनावति**—तनाव तनाती है ।
**ओभा**—आभा ।
**जुड़ावत**—शीतल होते हैं ।
**इकसी**—एकसी ।
**लोल**—चंचल ।
**रास-रमन**—रास-क्रीड़ा ।
**ता**—उसका ।
**गवन**—गमन, चलना ।
**बालगुडी**—छोटी गुड्डी (पतंग) ।

**अवगाहत**—डुब्बी लगाए हुए ।

**पच्छ**—पच्छ—पक्ष, जुग पच्छ—अँधेरा और उजेला पाख ।

**प्रतच्छ**—प्रत्यक्ष ।

**लुकत**—छिप जाता है ।

**अविकल**—पूर्ण, ज्यों का त्यों ।

**तितनो**—उतना ।

**रजत**—चाँदी ।

**चकई**—चक्र ।

**निसिपति**—चन्द्रमा ।

**मल्ल**—पहलवान ।

**कलहंस**—राजहंस ।

**मज्जत**—नहाते हैं ।

**पारावत**—कबूतर ।

**कारंडव**—हंस या बत्तख की जाति का एक पक्षी ।

**जल-कुक्कुट**—जल मुर्गी ।

**चक्रवाक**—चकवा ।

**पाँवड़े**—पायदाज, वह कपड़ा या बिछौना जो आदर के लिए किसी के मार्ग में बिछा दिया जाता है ।

**रत्नरासि**—रत्नों का ढेर ।

**कूल**—किनारा ।

**बगराए**—फैलाए, छितराए ।

**मुक्त**—मोती ।

**श्यामनीर**—यमुना का जल श्याम होता ।

**चिकुरन**—बाल ।

**सतगुन**—सतोगुण । सतोगुण का रंग श्वेत माना जाता है ।

**मोट की मोट**—गठरी की गठरी ।

**बिलमाई**—रुकी रहना या ठहरी रहना (किसी भाव के वशीभूत हो ) ।

**जरदी**—पीलापन । दुर्बलता, विरह-पीड़ा ।

**छरी सी**—छली हुई सी । इसका अर्थ 'छड़ी' भी लिया जा सकता है, अर्थात् छड़ी के समान पतली जो दुर्बलता का चिह्न है ।

**छकी सी**—छकी हुई सी ( प्रेम में ) ।

**जकी सी**—चकपकाई हुई सी ।

**जीवति मरी रहै**—जीते हुए भी मरी के समान (विरह के कारण)।
**मुरछि परी रहै**—मूर्च्छित हुई पड़ी रहती है।
**बाएँ अंग का फरकना**—स्त्रियों के लिए शुभ माना जाता है।
**मान न मान मैं तेरा मेहमान**—जबर्दस्ती गले पड़ना।
**मेरो पिय मोहि बात न पूछै तऊ सोहागिन नाम**—जबर्दस्ती किसी परिस्थिति में विश्वास रखना।
**अतीतन**—यतियों, साधुओं।
**गादी**—गद्दी।
**संसार को जोग तो और ही रकम को है**—संसार के जोग (प्रेम) का तो दूसरा ही मूल्य है, अर्थात् लौकिक प्रेम जोगिन के प्रेम से भिन्न है।
**पचि मरत**—हैरान होते है, वृथा बहुत अधिक परिश्रम करते है।
**धूनी**—साधुओं द्वारा अपने सामने लगाई हुई आग।
**मुद्रा**—साधुओं के पहनने का कर्ण भूषण, छल्ला।
**लट**—बालों का गुच्छा, केशपाश।
**मनका**—माला का दाना।
**अचल**—न टूटनेवाली, अडिग।
**असगुन...चढ़ाना**—असगुन की मूरति—अपशकुन की मूर्ति, अपशकुन का प्रतीक, राख को शरीर पर कभी न चढ़ाना।
**तमोल**—पान।
**है पंथ...मत जाना**—आँखों का लग जाना ही हमारा पंथ है अर्थात् प्रेम-पथ।
**शिवजी से जोगी...सिखाना**—यहाँ 'योग' का 'मिलना', 'संयोग' अर्थ है।
**जीको बेधे डालता है**—हृदय को छेदे डालता है।
**चोटल**—चोट खाया हुआ, जख्मी।
**उपासी**—उपासना करनेवाली।
**डगर**—मार्ग, रास्ता।
**कलेजा ऊपर को खिंच आता है**—जी घबराया जाता है।
**पाहुना**—अतिथि।
**बहाली बता**—बहाना कर।
**आस**—सहारा।
**जो बोले सो घी को जाय**—अपनी कही या बताई हुई बात अपने ही सिर पड़ना।
**अलख गति...प्यारी की**—**अलख**—अगोचर, जो जानी न जा सके। **पिया**—**प्यारी**—श्रीकृष्ण और चन्द्रावली।

**यारी की**—प्रेम की ।

**त्रिभुवन की सब रति गति मति···त्रिभुवन**—स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल ।

**रति**—प्रेम । **गति**—मर्यादा । **मति**—बुद्धि । **छबि**—सौन्दर्य ।

**केहि**—किसे ।

**चितवति चकित मृगी सी—चितवति**—देखती है । **चकित मृगी सी**—मृगी की भाँति चकित हो ।

**अकुलाति लखाति ठगी सी—अकुलाति**—व्याकुल होती है । **लखाति ठगी सी**—ठगी सी दिखाई पड़ती है, जैसे किसी ने कुछ छीन लिया हो ।

**तन सुधि करु**—शरीर का ध्यान कर ।

**खगी-सी**—लिप्त हुई सी, भूली हुई सी ।

**जकी सी**—स्तब्ध सी ।

**मद पीया**—मद पान कर लिया है ।

**क**—अथवा ।

**भूलि बैखरी—बैखरी**—वैखरी—वाक्शक्ति । वाक्शक्ति भूलकर, मूक भाव से ।

**मृगछौनी**—मृग की बच्ची ।

**जले पर नोन**—और उत्तेजित करना । एक तो चन्द्रावली वैसे ही विरह-पीड़ित है, उस पर संगीत और साहित्य के योग से वह और भी पीड़ित हो उठती है ।

**हम अपने···अनुभव कर रहे हैं**—काव्यगत प्रेम और सौन्दर्य की अपेक्षा चन्द्रावली का प्रेम और सौन्दर्य सुधारस-पान उसका निजी अनुभव है, अतएव अधिक विलक्षण है ।

**पत**—लज्जा ।

**चबाई**—निंदक ।

**धरिहै उलटो नाऊँ**—उलटी बदनामी करेंगे ।

**सुजान-शिरोमनि—सुजान**—चतुर, सयाना, सज्जन, प्रेमी । **शिरोमनि**—श्रेष्ठ । 'सुजान' से श्रीकृष्ण का तात्पर्य है ।

**मरमिन**—मर्म जाननेवाली, रहस्य जाननेवाली ।

**पटुका**—वह वस्त्र जो कमर मे बाँधा जाता है, फेंटा ।

**नाँधि**—बाँध कर ।

**बाहर···गर समाधि**—अर्थात् बाहर-भीतर दोनों स्थानों में तुम्हें प्राप्त करूँगी । **अन्तर करौंगी समाधि**—तुम्हारा ध्यान करते हुए हृदय में समाधि लगा दूँगी, अर्थात् श्रीकृष्ण को हृदय में छिपा लेगी ।

**लुकाय**—छिपा लूँ।
**जिन जाहु**—मत जाओ।
**किन**—क्यों न।
**लाहु**—लाभ।
**अमित**—अपरिमित, बहुत अधिक।
**अनुदिन**—प्रतिदिन।
**नाखौं**—डालूँ, गिराऊँ, मिलाऊँ।
**जनमन की**—जन्मजन्मान्तर की।
**तू तो मेरी···लीला है**—पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के अनुसार है।
**युगल के अनुग्रह···किसको है**—युगल—कृष्ण और राधा। पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के अनुसार है। चन्द्रावली के इस विशेष सन्दर्भ में कृष्ण के अतिरिक्त राधा का अनुग्रह भी आवश्यक था, अतएव 'युगल का अनुग्रह' शब्दों का प्रयोग हुआ है।
**मैं तो अपुने प्रेमिन···होइ वेई के नहीं**—पुष्टिमार्गीय सिद्धान्त के अनुसार है। दे० भूमिका।
**सुखेन**—सुखपूर्वक।
**स्वामिनी...सुखेन पधारौ**—**स्वामिनी**—प्रधान महिषी राधा। नाटिका के लक्षण के अनुसार स्वामिनी की यह आज्ञा आवश्यक थी। इसके बिना श्रीकृष्ण और चन्द्रावली निस्संकोच न मिल सकते थे।
**सखी, पीतम तेरो तू...नेत्र सफल करैं**—पुष्टिमार्ग के सिद्धान्तानुसार है। दे० भूमिका।
**परिलेख**—उल्लेख, वर्णन।
**प्रेम की टकसाल**—आदर्श प्रेम।
**युगल जोड़ी**—श्रीकृष्ण और चन्द्रावली।
**लहौरी**—प्राप्त करोरी।
**जुगल रूप**—श्रीकृष्ण और चन्द्रावली।
**बरु**—चाहे।
**अघ**—पाप, दुःख।
**उमहौ री**—उमाड़ो, उमगाओ, उत्पन्न करो।
**राधा चन्द्रावली...निबहौ री**—इन सब नामों का पुष्टिमार्ग में अत्यधिक महत्त्व माना गया है। इन पुण्य नामों का प्रातः उठते ही स्मरण करना चाहिए।

**भरत को वाक्य**—भरत-वाक्य (दे० भूमिका, 'संक्षिप्त नाट्य-शास्त्र)।

**परमारथ—परमार्थ**—नाम रूपादि से परे यथार्थ तत्व। इसका 'दूसरों की भलाई, अर्थ भी होता है।

**स्वारथ**—स्वार्थ—अपनी भलाई, अपना हित।

**संग मेलि न सानैं**—एक साथ न मिलावै।

**आचारज**—आचार्य।

**वृंदाविपिन**—वृंदावन।

**थिर होई**—स्थिर हो, दृढ़ हो।

**जन वल्लभी**—वल्लभ सम्प्रदाय का अनुयायी।

**जगजाल**—संसार का बन्धन।

**अधिकार**—पहले कहा जा चुका है श्रीकृष्ण की भक्ति उसीको प्राप्त होती है जिसे अधिकार है। यह अधिकार श्रीकृष्ण के अनुग्रह से मिलता है। दे० भूमिका।

**रतन-दीप**—रत्न-दीप। रत्न-दीप इसलिए कहा है ताकि वह सदा जगमगाता रहे, कभी बुझे नहीं, राग द्वेष, माया-मोह, दंभ आदि की आँधी भी उसे न बुझा सके। भरत वाक्य से भी भारतेन्दु के वल्लभ कुल के वैष्णव होने का पता चलता है।

—